H
812.8
R 186 N

H
812.8
R186N

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY * SIMLA

निर्माण का देवता

[एकांकी-संग्रह]

Vinod Rastogi

विनोद रस्तोगी

'Bombai' Prakashan

बम्बई प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

बम्बई १

Bombay

प्रथम संस्करण : १९५९

© विनोद रस्तोगी

39860
21. 6. 75
SIMLA

रु० २·५०

H
812.8
R186 N

Library IIAS, Shimla
H 812.8 R 186 N
00039860

प्रकाशक : बम्बई प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, कमानी चेम्बर्स, निकल रोड, बम्बई १
मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी ५४७३–१५

सूची-पत्र

१. निर्माण का देवता	...	१
२. तितली	...	२२
३. मण्डल-मवेशी और मनुष्य	...	३६
४. पप्पू	...	४४
५. पत्थर-दिल	...	५१
६. इण्टरव्यू	...	६३
७. कानून की दीवार	...	७५
८. अपना पराया	...	८४
९. पहरेदार	...	९३
१०. बरगद की छाया	...	१०१

नाटककार श्री विनोद रस्तोगी

श्री विनोद रस्तोगी को उपन्यासकार, कवि और नाटककार रूप में ख्याति मिली है। श्री रस्तोगी का जन्म सन् १९२३ में शम्सावाद नामक कस्बे के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। उन्होंने शम्सावाद, फर्रुखावाद, कन्नौज और कानपुर में शिक्षा प्राप्त की। सन् १९४२ से वे कानपुर में ही जमे हैं।

रस्तोगीजी का साहित्यिक जीवन सन् १९३८ में प्रारम्भ होता है। पहले वे कविताएँ ही लिखते थे और उनकी कविताएँ हिन्दी के प्रमुख पत्रों में प्रकाशित होती थीं। सन् १९५२ से वे गद्य की ओर भी झुके और तव से अव तक तीन उपन्यासों, दो नाटकों तथा लगभग पचास एकांकियों का प्रणयन कर चुके हैं।

श्री रस्तोगी के काव्य **जिन्दगी के गीत** में जीने की प्रेरणा देनेवाली कविताएँ हैं। कवि जिन्दगी को ही एक गीत मानता है। उसका कथन है—

जिन्दगी के गीत मैं गाता नहीं,
जिन्दगी खुद एक प्यारा गीत है।

रस्तोगीजी विश्वास, आशा और मानवता के गायक हैं। उनके उपन्यासों में यही स्वर उभरा है। तीनों उपन्यासों को आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कृतियाँ कहा जा सकता है। जीवन और समाज की मानव-समस्याओं पर उन्होंने मौलिक दृष्टि से विचार किया है। समाज के हर वर्ग के पात्र उपन्यासों में आये हैं— जिन्हें हम व्यक्ति न कहकर टाइप कह सकते हैं। इस प्रकार मानव-जीवन के अध्ययन में जो मान्यताएँ आपने अपने उपन्यासों में दी हैं वे हमें नयी स्फूर्ति के साथ-साथ चिन्तन के लिए नयी दिशा भी देती हैं।

रस्तोगीजी की नाटक साहित्य को देन वहुमूल्य है। वे विलक्षण प्रतिभा, क्रान्तिकारी विचारधारा एवं रंगमंचीयता के गुणों को लेकर नाट्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं। उनकी नाट्यकला पाश्चात्य आदर्शों से प्रभावित है, पर उनकी विचारधारा तथा समस्याएँ भारतीय हैं। वे एक समाज-सुधारक हैं। उन्होंने हमारे समाज की अनेक नयी-पुरानी समस्याओं का विवेचन तथा समाधान अपने

एकांकियों में व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। हमारे समाज में जो विद्रूप, जो पुरानी रूढ़ियाँ अभी तक घुन की तरह लगी हुई हैं, उन्हें उन्होंने खूब उभारा है और कहीं-कहीं तो अच्छी खबर ली है। यथार्थवाद की आधारशिला पर उनके एकांकी नयी पीढ़ी की क्रान्ति का स्वर हैं। उनके विचार मौलिक, सिद्धान्त आदर्शवादी और आदर्श व्यावहारिक हैं। उनका क्षेत्र विस्तृत है। परिवार की नाना छोटी-छोटी समस्याओं से लेकर व्यक्ति, समाज, राजनीति एवं अन्य सामयिक समस्याओं तक उनकी पैनी दृष्टि पैठी है। उनके अधिकांश एकांकी अव्यावसायिक मंच पर अभिनीत हो चुके हैं और अनेक एकांकियों का गुजराती अनुवाद भी हो चुका है।

आजादी के बाद नाटक हिन्दी में मौलिक प्रयोग है। सम्पूर्ण नाटक में एक ही सेट है। तीन अंकों के इस नाटक में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् उत्पन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का बड़ा सजीव चित्रण है। शरणार्थी-समस्या, अध्यापकों की समस्या, श्रमिकों की समस्या, घूसखोरी, नैतिकता का अभाव आदि का समावेश है इस नाटक में। थोड़े पात्रों को लेकर कथानक का ताना-बाना अत्यन्त कुशलता से बुना गया है। ऊपर से साधु और समाज के सम्मानित नागरिक, परन्तु अन्दर धूर्त सेठजी का पर्दाफाश बड़े नाटकीय ढंग से हुआ है। अजीत, रमेश और नीला का चरित्र बहुत सफल बन पड़ा है। नवीन विचारधारा, नवीनतम शिल्प तथा रंगमंचीयता के गुणों के कारण ही यह नाटक उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुका है।

नवीनतम शिल्प में लिखा नाटक **नये हाथ** हिन्दी का अत्यन्त सफल नाटक है। इसमें भी तीन अंक हैं पर सेट एक ही है। समस्त घटनाएँ एक ही कमरे में घटती हैं। कथा भी कुल डेढ़ दिन की है। नयी और पुरानी मान्यताओं, विचारधाराओं और पीढ़ियों का नाटकीय संघर्ष इस नाटक में देखते ही बनता है। यह नाटक कलकत्ते में दो बार अभिनीत हो चुका है और थियेटर सेंटर कलकत्ता द्वारा आयोजित अखिल भारतीय नाटक प्रतियोगिता में पुरस्कृत भी हो चुका है। समय के साथ मूल्य भी बदलते हैं। अतः पुरानी तथा जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं के प्रति मोह उसी प्रकार है जैसे बँदरियाँ अपने मृत बच्चे को भी सीने से लगाये रहती हैं। प्रगति तभी सम्भव है जब हम समय के साथ बदलें। यही इस नाटक की मूल भावना है।

पुरुष का पाप एकांकी संग्रह में नौ एकांकी संगृहीत हैं। रस्तोगीजी की पैनी दृष्टि हमारे समाज में व्याप्त पुरुष की वासना, साम्राज्य-लिप्सा, महत्त्वाकांक्षा, स्वार्थ, क्षणिक तृप्ति के लिए नारी का उपयोग, उसके साथ होनेवाले अनगिन अत्याचार और सामाजिक शिकंजे में फँसी तड़पती-कलपती नारी के करुणक्रन्दन की ओर गयी है। पाप पुरुष करता है और उसका दण्ड नारी को भोगना पड़ता है। इसी सनातन सत्य को पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानकों द्वारा नाटककार ने बड़े सजीव ढंग से चित्रित किया है। आर्थिक दासता, भीरुता, लज्जा और शारीरिक कोमलता का दण्ड बिचारी नारी सदा से भोगती आयी है। रस्तोगीजी की लेखनी ने नारी के प्रति पुरुष की उपेक्षा आदि के प्रति विद्रोह का स्वर ऊँचा किया है।

कसम कुरान की एकांकी संग्रह में ग्यारह एकांकी हैं। चार ऐतिहासिक, छ समस्याप्रधान सामाजिक तथा एक कल्पनाप्रधान एकांकी है। मंगल, मानव और मशीन-विज्ञान पर आधारित, विश्वशान्ति के प्रचार के उद्देश्य से लिखा गया है। यह एकांकी हिन्दी में मौलिक प्रयोग है। लूप होल, रथ के पहिए, पैसा, लड़की और जनसेवा, इस संग्रह के बहुत सफल एकांकी हैं। लूप होल में होली के मजाक के माध्यम से हमारे समाज की कई विभीषिकाओं पर व्यंग्य किया गया है। रथ के पहिए में यह दिखाया गया है कि गृहस्थी के रथ के दो पहिए हैं—पति और पत्नी। रथ सुख और समृद्धि के पथ पर तभी बढ़ सकता है जब दोनों पहिए साथ-साथ चलें। पैसा, लड़की और जनसेवा में विधवा आश्रमों तथा अनाथालयों की आड़ में पनपनेवाले व्यभिचार की पोल खोली गई है।

बहू की विदा में दस एकांकी नाटक हैं। सभी सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं। दहेज, घूसखोरी, प्रेम-विवाह, पाश्चात्य सभ्यताजन्य समस्याएँ, आर्थिक एवं सामाजिक विषमताएँ आदि इन एकांकियों का विषय है। दूध की नदियाँ, खोपड़ी और बम, सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित हैं और इनमें तथाकथित नेताओं का कच्चा चिट्ठा है। हीरे का हार में हार की चोरी के माध्यम से भिन्न स्तरों की नारियों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस एकांकी में पुरुष पात्र एक भी नहीं है और शायद इसीलिए यह नाटक लड़कियों के स्कूल-कालेजों में बहुत लोकप्रिय हुआ है। और मुन्ना मर गया; शैतान का दिल, धुएँ की परछाइयाँ तथा दो शरीफ, एक आवारा काफी सशक्त रचनाएँ हैं। बहू की विदा एकांकी तो दर्जनों बार अभिनीत हो चुका है।

एकांकी नाटक की भाँति रस्तोगीजी रेडियो नाटक लिखने में भी सिद्धहस्त हैं। सन् १९५४ में आकाशवाणी, दिल्ली द्वारा आयोजित अखिल भारतीय रेडियो नाटक प्रतियोगिता में आपके रेडियो नाटक अँधेरा, फिसलन और पाँव को द्वितीय पुरस्कार मिला था। आपने अनेक रेडियो नाटक लिखे हैं जो समय-समय पर आकाशवाणी से प्रसारित होते रहे हैं। हाल ही में आपके रेडियो नाटकों का समूह **गोपा का दान** प्रकाशित हुआ है जिसमें आठ नाटक संगृहीत हैं।

छोटे, सरल और चुस्त संवाद रस्तोगीजी के नाटकों की विशेषता हैं। आपकी भाषा भावानुकूल होती है। ऐतिहासिक नाटकों में शुद्ध हिन्दी, सामाजिक नाटकों में बोलचाल की भाषा, यवन पात्रों के मुख से उर्दू और नयी सभ्यता के पुजारियों के मुख से अँग्रेजी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग किया गया है।

रस्तोगीजी के संवादों में ओज, प्रवाह और प्रभाव है। कहीं-कहीं पर तो ऐसे करारे व्यंग्य हैं कि पाठक तिलमिला कर रह जाता है। नाटककार ने हमारे समाज की दुर्बलताओं पर कस कर प्रहार किये हैं, पर उन प्रहारों के पीछे ध्वंस की नहीं, निर्माण की भावना है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से आप के सभी नाटक अत्यन्त सफल हैं। पात्रों का चुनाव नाटककार ने हमारे जीवन से ही किया है। फलस्वरूप हर पात्र जाना-पहचाना लगता है। रस्तोगीजी के चरित्र-चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पात्र जीते-जागते व्यक्ति लगते हैं। नाटककार के हाथ की कठपुतली मात्र नहीं।

संघर्ष नाटक की आत्मा है। सफल नाटक वही होता है जिसमें संघर्ष सूत्र उभरे। रस्तोगीजी के सभी नाटक इस दृष्टि से सफल हैं। उनकी कृतियों में हमें व्यक्तियों, विचारधाराओं, आदर्शों, मान्यताओं और भावनाओं के संघर्ष के दर्शन होते हैं।

जहाँ तक नाटक सम्बन्धी मान्यताओं का प्रश्न है, रस्तोगीजी यह आवश्यक मानते हैं कि नाटक में रंगमंचीयता का गुण तो होना ही चाहिये। इसके लिए कम-से-कम तथा सरलता से रंगमंच पर उपस्थित किये जा सकने योग्य दृश्य तथा छोटे और सरल संवाद आवश्यक होते हैं। स्वगत-कथन के पक्ष में वे नहीं हैं। वे यह नहीं चाहते कि निर्देशकों को भावों और मुद्राओं की हत्या करने की

छूट दी जाय। अतः वे अपने एकांकियों में विस्तृत रंगमंचीय निर्देश दे देते हैं। रस्तोगीजी स्वयं अच्छे अभिनेता रहे हैं और रंगमंच के अनुभव से उन्हें नाटक-लेखन में प्रचुर सहायता मिली है।

उनके सभी नाटकों में संकलनत्रय का पूरा-पूरा निर्वाह मिलता है। एक ही स्थान पर एक ही समय में घटनेवाली घटनाएँ उनके एकांकियों का विषय बनी हैं। इस नाटकीय घटना का कारण पहले से भी हो सकता है और फल बाद तक रह सकता है, परन्तु मंच पर घटना ही प्रधान है। कारण या पूर्वपरिचय संवादों की सहायता से ही आया है। इनके एकांकियों में गूढ़ विवेचन की गुंजाइश नहीं, यत्र-तत्र व्यंग्यात्मक संकेत या छोटे-छोटे मर्मस्पर्शी वाक्य अवश्य मिलते हैं जो समस्या पर सर्च लाइट फेंकते हैं।

सुगठित कथानक रस्तोगीजी के नाटकों की मूल विशेषता है। पहला संवाद ही कथा से सम्बन्धित रहता है, कथा को आगे बढ़ाने वाला होता है। एकांकी का हर पहलू मजबूत और एक-दूसरे पर आधारित रहता है, यों ही ढीला-ढाला नहीं लटकता। एकांकी चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर समाप्त हो जाता है—इसलिए पाठक पर पूरा प्रभाव पड़ता है और वह प्रभाव देर तक रहता है।

हमें रस्तोगीजी से बड़ी-बड़ी आशायें हैं।

प्रिन्सिपल, गवर्नमेण्ट कालेज,
सरदारशहर (राजस्थान)

डा० रामचरन महेन्द्र

निर्माण का देवता

[मानवीय दुर्बलताओं पर आधारित आदर्शोन्मुखी एकांकी]

पात्र

दिवाकर —ओवरसियर; अवस्था २६ वर्ष ।
रेखा —दिवाकर की पत्नी; अवस्था २३ वर्ष ।
गुलाबचंद —ठेकेदार ; अवस्था ४६ वर्ष ।
श्रीमती वर्मा—दूसरे ओवरसियर की पत्नी ; अवस्था २४ वर्ष ।
रामलाल —दिवाकर का पिता ; अवस्था ५० वर्ष ।

स्थान

दिवाकर के क्वार्टर का कमरा

समय

सन्ध्या

[कमरा साधारण है। सामने खुली हुई खिड़की है। बाँया द्वार बाहरी बरामदे और दायाँ अन्दर के कमरे में खुलता है। बीच में मेज और तीन कुर्सियाँ हैं। एक कोने में रैक पर कुछ मोटी पुस्तकें तथा कुछ अन्य कागज रखे हैं। दिवाकर दर्शकों की ओर मुँह किए बैठा हुआ कोई कागज देखने में मग्न है। नेपथ्य से पत्थर तोड़ने का स्वर उभरता है, फिर श्रमिकों का सहगान धीरे-धीरे उभरता है —

हैया हो हैया !
चूना गारा हैया !
हमको प्यारा हैया !!
हम मेहनत के दूत हैं, हैया !
हम धरती के पूत हैं, हैया !
है आराम हैया !
हमें हराम है या !
हैया हो हैया !!

दिवाकर गीत सुनकर मुस्कराता है और फिर कागज देखने लगता है, अन्दर से रेखा चाय की ट्रे लेकर आती है।]

रेखा—(ट्रे मेज पर रखकर) मैं तो तंग आ गई हूँ इस शोर-गुल से।

दिवाकर—(कागज एक ओर हटाकर) श्रम के पावन गीत को शोर-गुल कहती हो ?

रेखा—पावन गीत होगा तुम्हारे लिए, मुझे तो रत्ती भर भी नहीं भाता। यह भी कोई जिन्दगी है कि पल भर भी शान्ति नहीं। (चाय बनाने लगती है)

दिवाकर—तुम्हारी तो आदत पड़ गई है झींकने की।

रेखा—(प्याला पति की ओर बढ़ाकर कुर्सी पर बैठती हुई) तुम ऐसा नहीं कहोगे तो कौन कहेगा ? (रुककर) सोचा था नौकरी के बाद शान से रहेंगे। बंगला होगा, नौकर होंगे, कार होगी। मगर भाग्य में तो यह जंगल···

दिवाकर—(प्याला उठाकर) हम चाहें तो जंगल में भी मंगल मना सकते हैं,

रेखा ! यह बाँध एक पवित्र मन्दिर है, जिसमें निर्माण के देवता की प्रतिष्ठा हो रही है।

रेखा—तुम्हारा यह मन्दिर मेरे लिए पत्थर के ढेर से अधिक कुछ नहीं। सुनो, तुम किसी और जगह बदली क्यों नहीं करा लेते ? क्या शहर में ओवरसियर का कोई काम नहीं ?

दिवाकर—(घूँट लेकर) मैं अपनी इच्छा से यहाँ आया हूँ।

रेखा—मगर मेरी इच्छाओं का क्या होगा ? तुम्हारे लिए मैं अपने व्यक्तित्व का गला नहीं घोंट सकती।

दिवाकर—(चीखकर) रेखा—!

रेखा—(प्याला मेज पर रखकर) चीख कर तुम मुझे डरा नहीं सकते, मैं तुम्हारी पत्नी हूँ—बाँदी नहीं (दुखी स्वर में) शादी से पहले क्या-क्या सपने दिखाए थे। कोई भी सपना पूरा किया तुमने ?

दिवाकर—अगर हमारे सब सपने पूरे हो जाएँ तो फिर सपनों का मूल्य ही क्या रहे ?

रेखा—सपनों को सच्चा करना तो दूर, तुमने तो सचाई को भी सपना बना दिया है। मिसेज वर्मा को देखो—

दिवाकर—किसी की नकल करना ठीक नहीं। हमें अपनी चादर देखकर पैर फैलाने चाहिए।

रेखा—चादर छोटी रखने की जिम्मेदारी तुम पर है...तुम पर। मिस्टर वर्मा भी तुम्हारी तरह ओवरसियर हैं, कोई लाट साहब नहीं। फिर उन्हें...

दिवाकर—(बीच में) मि० वर्मा की तरह मैं अपना दीन-ईमान नहीं बेच सकता।

रेखा—तो मेरा जीवन क्यों नष्ट करते हो ? आखिर बिना पार्टी और क्लब के कोई इन्सान कैसे जिन्दा रह सकता है ?

दिवाकर—जैसे बाँध बनानेवाले हजारों मजदूर रहते हैं।

रेखा—मेरी बराबरी जंगली जानवरों से करते हो ?

दिवाकर—अगर मुझे तुम्हारे विचारों का पहले से ज्ञान होता तो...

रेखा—(बीच में) तो शादी न करते, यही न ? और अगर मैं जानती कि गंदे, भद्दे, जंगली मजदूर तुम्हारे लिए देवता हैं तो मैं भी शादी न करती।

दिवाकर—तो अब तलाक दे दो। रोकता कौन है ?

रेखा—(उठकर) तुम तो यह चाहते ही हो कि मैं जाऊँ और तुम दूसरी लाओ। मगर कान खोलकर सुन लो, मैं इतनी आसानी से पीछा नहीं छोड़ सकती।

दिवाकर—तो क्या करोगी ?

रेखा—अपने हक के लिए लड़ूँगी।

दिवाकर—अभी और कुछ बाकी है ? (आगे बढ़कर चिढ़े स्वर में) मेरी मर्जी के खिलाफ तुमने ठेकेदार से रेडियो लिया, सोफा सेट लिया, कालीन लिया और अब...

रेखा—गुलाबचन्द मुझे बेटी की तरह मानता है। उसने उपहार दिए, मैंने लिए। तुम्हें क्यों बुरा लगता है ?

दिवाकर—लोग तो यही समझते हैं कि मेरे इशारे पर चीजें ली गई हैं। यह कौन सोच सकता है कि पत्नी पति की आज्ञा के विरुद्ध गैर से कीमती उपहार ले सकती है ?

रेखा—वह जमाना गया जब बीबी पति की गुलाम थी। तुम्हारे सिद्धांत के लिए मैं अपने शौक़ का खून नहीं कर सकती और फिर गुलाबचन्द ठेकेदार गैर नहीं है वह मुझे बेटी...

दिवाकर—(बीच ही में) तुम इन ठेकेदारों को नहीं जानती। गुलाबचन्द मुझे फाँसने के लिए रेशमी जाल बुन रहा है, (मनाता हुआ) रेखा अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। उसकी चीजें लौटा दो।

रेखा—एक शर्त पर लौटा सकती हूँ।

दिवाकर—क्या ?

रेखा—मुझे कल ही वैसा सामान ला दो।

दिवाकर—मैं आकाश के तारे नहीं तोड़ सकता रेखा, तुम मेरी सीमाओं को जानती हो फिर भी...

रेखा—सीमाएँ टूट भी सकती हैं।

दिवाकर—पिताजी भी यही चाहते हैं कि मैं आदर्श सिद्धांत को तिलाञ्जलि देकर पैसा कमाऊँ। (दोनों हाथों में सिर थामकर) आखिर तुम लोग कुछ सोचते क्यों नहीं, समझते क्यों नहीं ? संसार में पैसा ही सब-कुछ नहीं है।

रेखा—पैसा सब सुखों की कुञ्जी है। आज तुम्हारे पास पैसा होता तो तारा की माँग कब की भर गई होती। (दिवाकर मौन रहता है) बाबूजी बार-बार

पैसे के लिए लिखते हैं, मगर तुम जवाब तक नहीं देते।

दिवाकर—(परेशान-सा कुर्सी पर बैठकर) क्या जवाब दूँ? तारा की शादी के लिए दस हजार रुपया चाहिए। इतनी रकम कहाँ से लाऊँ?

रेखा—तारा तुम्हारी बहन है। तुम पैसे का प्रबन्ध नहीं करोगे तो कौन करेगा?

दिवाकर—मगर दस हजार रुपए मैं दस जनम में नहीं पा सकता।

रेखा—चाहो तो चुटकी बजाते मिल सकते हैं।

गुलाबचन्द—(बाहर से) मैंने कहा, रेखा बिटिया!

दिवाकर—(धीमे से) आ गया कमबख्त।

रेखा—गाली क्यों देते हो जी? (ऊँचे स्वर से) आइये गुलाबचन्दजी।

(गुलाबचन्द का प्रवेश)

गुलाबचन्द—(हँसकर) मैंने कहा, नमस्ते ओवरसियर साहब।

दिवाकर—(रूखे स्वर में) नमस्ते।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, कोई गुस्ताखी हो गई मुझसे?

दिवाकर—मेरा वक्त खराब न कीजिये। कहिए, कैसे कष्ट किया है?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, शहर जा रहा था। सोचा, बिटिया रानी से मिलता चलूँ। शायद कुछ मँगाना हो। मैंने कहा,...या घूमने-फिरने जाना हो।

दिवाकर—रेखा को जाना होगा तो सरकारी जीप से चली जायेगी।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, हम भी तो सरकार के हैं। ओवरसियर साहब, आप अभी ठेकेदार गुलाबचन्द को जानते नहीं।

दिवाकर—और आप भी मुझे नहीं जानते। मेहरबानी करके आप फौरन चले जाइये। वरना...

रेखा—(बीच में ही) तुम्हें इनका अपमान करने का कोई अधिकार नहीं। (गुलाबचन्द से) बैठिये।

दिवाकर—(बिगड़ कर) रेखा...(मारने के लिए हाथ उठाता है)

गुलाबचन्द—मैंने कहा, यह बचपना कर रहे हैं आप? भला औरतों पर भी हाथ उठाया जाता है?

[दिवाकर रेखा की ओर घूरकर, तेजी से बाहर चला जाता है।]

गुलाबचन्द—मैंने कहा, बेकार ही नाराज कर दिया ओवरसियर साहब को।

मैं चला जाता तो...

रेखा—नहीं जी, सहन-शक्ति की भी सीमा होती है। आखिर समझ क्या रखा है मुझे ?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, मैं भी चलूँ बिटिया रानी।

रेखा—नहीं, नहीं, बैठिये।

[दोनों बैठते हैं।]

गुलाबचन्द—मैंने कहा, रेडियो ठीक चल रहा है ?

रेखा—हाँ, उसी से तो जी बहला रहता है। मगर उन्हें यह भी बरदाश्त नहीं। आप ही बताइये, आप से रेडियो ले लिया तो कौन-सा पाप किया !

गुलाबचन्द—मैंने कहा, लेने-देने में पाप कैसा ? क्या मैं अपनी बिटिया को कुछ दे भी नहीं सकता ?

रेखा—मैं तो परेशान हो गई हूँ रात-दिन की हाय-हाय से। कालेज में थी तो गाती थी, नाचती थी, ड्रामों में भाग लेती थी और अब (निश्वास छोड़कर) अब वे बातें सिर्फ कहानी रह गई हैं।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, सो तो मैं भी देख रहा हूँ। ओवरसियर साहब भी अजीब आदमी हैं। मैंने कहा—ओहदा बड़े, भाग्य से मिलता है। जब भगवान् ने मौका दिया है तो उससे लाभ भी उठाना चाहिए, मैंने कहा...

रेखा—मैं तो हार गई समझाकर।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, अभी दुनिया नहीं देखी है उन्होंने। सभी आँधी के आम बटोरने में लगे हैं।

श्रीमती वर्मा—(बाहर से) रेखा बहन, ओ रेखा बहन—

रेखा—(धीमे स्वर में) श्रीमती वर्मा हैं। आप उन्हें बिठाइए। मैं ट्रे अन्दर रख आऊँ।

[रेखा ट्रे लेकर कर अन्दर जाती है। श्रीमती वर्मा का प्रवेश]

श्रीमती वर्मा—अच्छा जी, आप भी बैठे हैं ?

गुलाबचन्द—(उठकर) मैंने कहा, लीजिए खड़ा हो गया।

श्रीमती वर्मा—(बैठकर) रेखा नहीं है ?

रेखा—(अन्दर से) अभी आई, एक मिनट में।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, मजे में तो हैं ?
श्रीमती वर्मा—आपकी बला से ।
गुलाबचन्द—मैंने कहा, कोई गुस्ताखी हुई ?
श्रीमती वर्मा—अरे साहब, अब आप बहुत बड़े आदमी हो गए हैं। हमें क्यों पूछेंगे ? हमारे क्वार्टर का तो रास्ता ही भूल गए आप ।
गुलाबचन्द—मैंने कहा, हमारे लिए तो सब उँगलियाँ बराबर हैं। वर्मा साहब की तो खास मेहरबानी है हम पर ।
श्रीमती वर्मा—हूँ–और अब दिवाकर साहब की मेहरबानी पाने की कोशिश हो रही है । क्यों ?
गुलाबचन्द—मैंने कहा, आप बहुत समझदार हैं ।

[रेखा का प्रवेश । वह साड़ी बदलकर आई है ।]

रेखा—(बैठकर) कहिए, कैसे रास्ता भूल गई ?
श्रीमती वर्मा—आप तो कभी आती नहीं मेरे यहाँ । मैंने सोचा, मैं ही आपको कष्ट दे आऊँ ।
रेखा—(विनम्रता से) इसमें कष्ट कैसा ? हमारे अहोभाग्य जो आप पधारीं । कहिए सब ठीक चल रहा है न ? वर्मा साहब मजे में हैं ?
श्रीमती वर्मा—वे तो मजे में हैं । मगर आपके साहब कैसे हैं जो आपको यहाँ छोड़कर अकेले घूम रहे हैं । भला शाम का वक्त कहीं घर में बैठने के लिए होता है ? चलिए मैं अपना नया रेडियो दिखाऊँ ।
रेखा—क्या करूँगी देखकर ?
श्रीमती वर्मा—फिल्मी गीत सुनेंगे कुछ देर ।
रेखा—मेरे घर में भी रेडियो है ।
श्रीमती वर्मा—(विस्मय से) अच्छा !
गुलाबचन्द—मैंने कहा, इसमें अचरज की क्या बात है ? वर्मा साहब की तरह दिवाकर साहब भी तो ओवरसियर हैं ।
श्रीमती वर्मा—ओह समझी । (उठकर) अच्छा, अब चलती हूँ । बहन, नमस्ते । (प्रस्थान)
गुलाबचन्द—मैंने कहा, बड़ी तेज औरत है । वर्मा साहब को उँगलियों पर

नचाया करती है।

रेखा—(मुस्कराकर) औरतों का काम ही मर्दों को नचाना है।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, मगर हर औरत ऐसी नहीं होती। अपने को देखो। मैंने कहा, लाख में एक हो। मैंने तो तुम्हारी जैसी सीधी और सरल औरत आज तक नहीं देखी।

रेखा—(प्रसन्नता से) झूठी तारीफ क्यों करते हैं?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, झूठ बोलनेवाले पर थू है। (रुककर) बेटी, थोड़ा कष्ट देना है। (रेखा प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखती है) ओवरसियर साहब तो मुझसे बहुत नाराज हैं। कह रहे थे, बाँध कमजोर बना है, पास नहीं करूँगा। मैंने कहा, अगर तुम उनसे कह दो तो...

रेखा—(बीच ही में) मैं कैसे कह सकती हूँ? मैंने आजतक उनके सरकारी काम में दखल नहीं दिया।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, मेरे लिए इतना काम तो करना ही पड़ेगा बेटी। तुम मदद नहीं करोगी तो मैं कहीं का न रहूँगा, मैंने कहा, एकदम बरबाद हो जाऊँगा। मैं तुम्हें सगी बेटी की तरह मानता हूँ। मैंने कहा इसी नाते··

रामलाल—(बाहर से) दिवाकर बेटा, ओ दिवाकर बेटा!

रेखा—(उठकर) यह तो बाबूजी की आवाज है। (धीमे स्वर में) देखिए आप बाबूजी से कहियेगा। वे उनकी बात नहीं टालेंगे।

रामलाल—(प्रवेश करके) बहू, दिवाकर नहीं है क्या?

रेखा—घूमने गए हैं। आते ही होंगे। आपने अपने आने की खबर क्यों नहीं दी? हम जीप लेकर आ जाते। बेकार ही कष्ट उठाया!

रामलाल—(बैठकर) तकलीफ-आराम तो लगा ही रहता है, (गुलाबचन्द की ओर देखकर) आप...

रेखा—आप यहाँ के ठेकेदार हैं—बाबू गुलाबचन्दजी। बहुत नेक आदमी हैं। मुझे सगी बेटी की तरह मानते हैं। आप इनसे बातें कीजिए। मैं अभी चाय लाती हूँ।

[रेखा अन्दर जाती है।]

गुलाबचन्द—मैंने कहा, आपका बेटा बहुत होनहार है।

रामलाल—(हँसकर) सब आपकी कृपा है।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, मगर एक कमी है।

रामलाल—क्या मतलब ?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, मैं आप ही से पूछता हूँ, बहती गंगा में हाथ न धोना कहाँ की अक्लमंदी है ? (रुककर) मैंने कहा, मगर आपके साहबजादे चाहें तो बात की बात में हजारों कमा सकते हैं।

रामलाल—ओह, समझा।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, जी हाँ। मगर ओवरसियर साहब तो ईमानदारी से जोंक की तरह चिपके हैं। रेखा बेटी तो समझाकर हार गई। मैंने कहा, अब आप ही समझाइये।

रामलाल—हूँ...मगर...किसी तरह का खतरा तो नहीं ?

गुलाबचन्द—(हँसकर) आप भी बच्चों जैसी बातें करते हैं। मैंने कहा, खतरा किस चिड़िया का नाम है ? जब ऊपर से लेकर नीचे तक सब खाते हैं तो डर किस बात का ? मैंने कहा, मैं तो अपना समझकर कह रहा हूँ। मुझे रेखा बेटी ने बताया था कि आपको अपनी बेटी की शादी...

रामलाल—(बीच में) हाँ साहब। घर में सयानी बेटी बैठी है। उद्धार की कोई सूरत नजर नहीं आती। जहाँ बात चलाता हूँ, हजारों की माँग होती है।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, अब आप ही सोचिए, ओवरसियर साहब की जिद कितनी मँहगी है। मैंने कहा, अगर वे चाहें तो कलम के एक इशारे में बहन के हाथ भी पीले हो सकते हैं और आप लोगों की जिन्दगी भी चैन से कट सकती है।

रामलाल—वह कैसे ?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, रेखा बेटी आपको यह तो बता ही चुकी है कि बाँध बनाने का ठेका मेरा है। आप यह भी जानते होंगे कि ईमानदारी का मतलब है घर की पूँजी गँवाना। मैंने कहा, अगर मसाले वगैरह में दाँव-पेंच न करूँ तो कमाऊँ क्या ? आप समझ रहे हैं न ?

रामलाल—कहे जाइये। मैं सब कुछ समझ रहा हूँ।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, बाँध का जो हिस्सा बनकर तैयार हो गया है, अगर ओवरसियर साहब पास कर दें तो मैं हर सेवा को तैयार हूँ, (रुककर)

काम तो मेरा हो ही जायेगा। मैंने कहा, मगर मैं चाहता हूँ कि घर का पैसा घर ही में रहे।

रामलाल—आप चिन्ता न कीजिए, बाबू गुलाबचन्दजी। आपका काम हो जायेगा।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, काम तो हम दोनों का ही है। तीस हजार रुपया मेरे हाथ का मैल है।

रामलाल—आपका काम कराना भी मेरे लिए बाएँ हाथ का खेल है। दिवाकर मेरा बेटा है। वह मेरी आज्ञा नहीं टालेगा।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, तब ठीक है। मैं सुबह रुपया पहुँचा दूँगा। (उठकर) अब आज्ञा दीजिए।

(चाय की ट्रे लिए रेखा का प्रवेश)

रेखा—अरे, आप कहाँ चल दिए? चाय तो पीते जाइये।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, अब चलने दो रेखा बेटी। जरूरी काम है। और हाँ—बाबूजी ने मेरी सहायता करने का वचन दे दिया है।

(गुलाबचन्द का प्रस्थान)

रेखा—(ट्रे मेज पर रखकर) गुलाबचन्द ने आपसे बात की?

रामलाल—(उठकर टहलता हुआ) तीस हजार रुपया बात की बात में मिल सकता है। तारा की शादी हो जायेगी और और...

रेखा—मगर वे गैरकानूनी काम करेंगे?

रामलाल—करेगा क्यों नहीं? क्या उसका हम लोगों के प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं?

(रेखा चाय बनाती है। तभी बाहर से दिवाकर आता है।)

दिवाकर—बाबूजी, आप? (झुककर पैर छूता है) आपने आने की पहले से सूचना क्यों नहीं दी?

रामलाल—जरूरी काम से अचानक आना हो गया। कल लौट जाऊँगा।

दिवाकर—जब आये हैं तो चार-छः दिन रहकर जाइयेगा।

रामलाल—मुझे परसों तारा का रिश्ता तय करना है।

दिवाकर—(खुशी से) बात पक्की हो गई?

रामलाल—पक्की ही है। मगर परसों तक उनके पास दस हजार रुपए पहुँच जाने चाहिए। इसीलिए मुझे आना पड़ा।

दिवाकर—दस हजार रुपए? मगर मैं...

रामलाल—बाबू गुलाबचन्दजी तीस हजार रुपए देने को तैयार हैं। उनका काम कर दो।

दिवाकर—मगर कमजोर बाँध कैसे पास कर सकता हूँ? यह तो देश के साथ गद्दारी होगी।

रामलाल—देश के लिए माँ-बाप को भूखा-नंगा रखना चाहता है, बहन को क्वाँरी रखना चाहता है? (दृढ़ता से) तुझे गुलाबचन्द का काम करना ही पड़ेगा।

दिवाकर—मैं देश-द्रोही नहीं बन सकता, बाबूजी!

रेखा—(प्याला बढ़ाकर) पहले चाय पी लीजिए, बाबूजी। सफर की थकान—

रामलाल—(बीच ही में गरजकर) जब तक मेरी बात पूरी नहीं होगी मैं इस घर का पानी तक नहीं पीऊँगा। (दिवाकर से) मैं गुलाबचन्द को वचन दे चुका हूँ। अगर...अगर मेरा वचन पूरा न हुआ तो समझ लूँगा मेरे कोई बेटा नहीं। सुना? मेरे लिए तू मर जायगा। तारा और तेरी माँ का गला घोंटकर मैं भी फाँसी लगा लूँगा।

रेखा—बाबूजी की बात मान क्यों नहीं लेते?

दिवाकर—मगर अपनी अन्तरात्मा की हत्या कैसे करूँ?

रामलाल—तो फिर ले, मेरा ही गला घोंट दे।

रेखा—गुलाबचन्द का काम तो हो ही जायेगा। तुम नहीं करोगे, कोई दूसरा कर देगा। फिर बेकार में बाबूजी को दुख क्यों पहुँचा रहे हो?

रामलाल—(रुद्ध कंठ से) बेटा, मेरे बुढ़ापे पर नहीं, तो बहन की सूनी माँग पर ही तरस खा।

दिवाकर—ठीक है। अगर पिता ही पुत्र का पतन चाहता है तो यही सही। मैं अपनी आत्मा की हत्या करूँगा, आदर्श और सिद्धांत का सौदा करूँगा, मुल्क के साथ गद्दारी करूँगा...गद्दारी करूँगा!

रामलाल—(हर्ष से) मुझे यही आशा थी तुझसे। (रेखा से) देखा बहू, मैं कहता था न, दिवाकर मेरा बेटा है। वह मेरी बात नहीं टालेगा।

रेखा—(प्रसन्न स्वर में) सुबह का भूला शाम को घर लौट आए तो भूला नहीं कहलाता बाबूजी। (चाय का प्याला छूकर) अरे यह चाय तो एकदम ठंडी हो गई। दूसरी बनाती हूँ।

रामलाल—अब चाय नहीं पिऊँगा। खाना ही खाऊँगा थोड़ी देर में। तब तक जरा हाथ-मुँह धोकर आराम कर लूँ।

[रामलाल अन्दर जाता है। दिवाकर परेशानी की मुद्रा में टलहता है। फिर थका-सा दर्शकों की ओर मुँह करके बैठ जाता है।]

रेखा—(कंधे पर हाथ रखकर) नाराज हो गए मुझसे ?

दिवाकर—(चिढ़कर) भगवान् के लिए मुझे अकेला छोड़ दो। जाओ, (ऊँचे स्वर में) जाओ !

[रेखा ट्रे उठाकर अन्दर जाती है। दिवाकर दोनों हाथों से माथा दाबता है। प्रकाश धीमा हो जाता है, दिवाकर के चेहरे पर फोकस पड़ता है। वह कुर्सी पर पीछे धोक लगाकर बैठ जाता है। आँखें बन्द हैं। नेपथ्य से 'हैया हो हैया' का गान उभरता है। गीत की दो पंक्तियाँ ही हो पाती हैं कि सहसा तेज तूफान का स्वर आता है। बिजली की कड़क और बादलों की गरज एकदम पास आती है। वर्षा का शोर। ये ध्वनियाँ धीमी होती हैं। फिर बाँध ढहने का स्वर। मजदूरों की चीख-पुकारें। एक स्वर उभरता है—"आज की ताजी खबर। बाँध की दीवारें ढह गईं। हजारों मजदूर घायल। बाँध की दीवारें ढह गईं। बाँध की दीवारें ढह गईं।"

इन स्वरों के मध्य से ही दिवाकर आँखें बन्द किए-किए बेचैनी का भाव प्रदर्शित करता है। वह सिर इधर-उधर हिलाता है। स्वर की पराकाष्ठा पर वह चीखता है। रेखा घबराई हुई अन्दर आती है।]

रेखा—(दिवाकर के कंधे झकझोर कर) क्या हुआ ?

[प्रकाश पूरा हो जाता है]

दिवाकर—(आँखें खोलकर उठता हुआ) बाँध ढह गया, रेखा, बाँध ढह गया !

रेखा—कैसी पागलों जैसी बातें कर रहे हो ?

दिवाकर—सच कह रहा हूँ। निर्माण के देवता की मूर्ति खण्डित हो गई। मैंने तूफान की आवाज सुनी, बाँध टूटने का स्वर सुना, मजदूरों की चीखें सुनीं, अखबारवाले की पुकार सुनी।

रेखा—मैंने तो कुछ नहीं सुना। जरूर तुमने सपना देखा है। क्या सो गए थे ?

दिवाकर—थोड़ी देर के लिए सो गया था। मगर अब आँखें खुल गई हैं। (दृढ़ता से) रेखा, बाबूजी से कह दो मैं देश और समाज के साथ गद्दारी नहीं कर सकता। गुलाबचन्द का बाँध पास नहीं होगा—कभी नहीं होगा!

रेखा—मगर तारा की माँग...

दिवाकर—(बीच ही में) तारा की माँग सूनी रह जाए, मगर देश की नदियाँ क्वाँरी नहीं रहेंगी। मेरा फैसला अटल है। मैं निर्माण के देवता की प्रतिमा को कलुषित नहीं कर सकता—नहीं कर सकता—

रेखा—(प्रायश्चित्त के स्वर में) अपराधिनी मैं हूँ। स्वार्थ ने मुझे अंधा कर दिया था। तुमने आँखें खोल दी हैं। मैं कल ही गुलाबचन्द की चीजें लौटा दूँगी। (रुद्ध कंठ से) मैंने तुम्हें ईमानदारी के रास्ते से डिगाना चाहा, निर्माण के देवता को कलुषित करना चाहा। (पैरों पर गिरकर) मुझे माफ कर दो, मुझे माफ कर दो।

दिवाकर—(रेखा को उठाकर) देवता मैं नहीं, वे करोड़ों किसान और मजदूर हैं जो अपने पसीने से चट्टानों पर फूल खिलाते हैं, अपनी मेहनत से धरती पर स्वर्ग बसाते हैं। हमारी श्रद्धा और पूजा उन्हीं के लिए होनी चाहिये, रेखा।

रेखा—(प्रसन्न स्वर में) तुम ठीक कहते हो। (दिवाकर का हाथ पकड़कर) चलो, हम बाबूजी को अपना फैसला बता दें।

[नेपथ्य से प्रारम्भवाला सहगान उभरता है। दोनों हाथ में हाथ लिए प्रसन्न मुद्रा में अन्दरवाले द्वार की ओर बढ़ते हैं। तभी धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।]

39860
21-6-7?

तितली

[व्यंग्य-एकांकी]

पात्र

कान्तिलाल —धनी व्यक्ति ; अवस्था ४५ वर्ष ।
रूप —कान्तिलाल की पुत्री ; अवस्था २० वर्ष ।
विमल —रूप का सहपाठी ; अवस्था २२ वर्ष ।
मनोज —धनी युवक ; अवस्था २३ वर्ष ।

स्थान

कान्तिलाल की कोठी का हाल

समय

सन्ध्या

[हाल आयताकार है। फर्श पर कालीन विछा है। सामने की दीवार में दो नीची और लम्बी खिड़कियाँ हैं। खिड़कियाँ खुली हुई हैं और पर्दे एक ओर खिसके हुए हैं। खिड़कियों के ऊपर दीवार में प्राकृतिक दृश्यों के चित्र टँगे हैं। चित्रों के बीच में बिजली से चलनेवाली गोल सुन्दर घड़ी है जिसमें पाँच बजकर दस मिनट हुए हैं। खिड़कियों के वीच में कारनिस है जिस पर फूलदान तथा कुछ प्रतिमायें हैं।

हाल में दो द्वार हैं। दाहिनी ओर का द्वार बाहरी बरामदे तथा बायीं ओर का दूसरे कमरे में खुलता है। दोनों पर आकर्षक पर्दे पड़े हैं। द्वारों के ऊपर दीवार में हिरन के सींग लगे हैं।

सामने बायें कोने में एक मेज पर रेडियो रक्खा है। पास ही छोटा गोल गद्दीदार स्टूल पड़ा है। दाहिने कोने में एक रैक है जिसमें कुछ पुस्तकें हैं। रैक के ऊपर ही टैबिललैम्प रक्खा है जो बहुत सुन्दर और आकर्षक है।

हाल के मध्य में सोफासेट पड़ा है। नीची गोलमेज पर भी फूलदान है। पास ही छोटे स्टूल पर फोन रक्खा है।

जब पर्दा उठता है तब रूप हाल में व्यग्रता से टहलती हुई दिखाई पड़ती है। वह इकहरे बदन की सुन्दर और गोरी युवती है। रेशमी गरारा और कुर्ता पहने है। वक्ष पर अस्त-व्यस्त चुनरी है। पैरों में स्लीपर है और कलाई में घड़ी बँधी है। वह उद्विग्न है। चेहरे पर चिन्ता का भाव है। रह-रहकर बाहरवाले द्वार के पास खड़ी होकर और पर्दा हटाकर बाहर देखती है और फिर निराश होकर टहलने लगती है—अपेक्षाकृत तीव्र गति से। बीच-बीच में कभी दीवार-घड़ी की ओर देखती है और कभी अपनी कलाई घड़ी की ओर।

कुछ देर बाद कान्तिलाल बायें द्वार से अन्दर आते हैं। वे स्वच्छ पाजामा, रेशमी कुर्ता और नागरा जूता पहने हैं। आँखों पर चश्मा है। भरे हुए चेहरे पर बड़ी-नोकदार मूँछें खूब फब रही हैं।]

कान्तिलाल—(लाड़ से) तू यहाँ है, रूपी! मैं तो समझता था अपने कमरे में होगी।

रूप—(टहलना बन्द करके) कमरे में बहुत ऊमस है, पापा।

कान्तिलाल—(हँसकर) पगली आजकल ऊमस कहाँ? (रुककर ऊँचे स्वर में) भोला, ओ भोला।

रूप—(धीमे स्वर में) भोला को मैंने काम से भेजा है।

कान्तिलाल—ठीक है। अच्छा, जा हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदल डाल।

रूप—(अल्हड़ता से) इन कपड़ों में क्या बुराई है?

कान्तिलाल—(हँसकर) मनोज को गरारा-वरारा पसन्द नहीं। जाकर साड़ी पहन ले।

रूप—लेकिन मुझे यही पोशाक पसन्द है।

कान्तिलाल—(समझाते हुए) ज़िद न कर, रूपी! मनोज ने तुझे इस पोशाक में देख लिया तो...

रूप—(दर्शकों की ओर मुँह करके कोच पर बैठकर) तो क्या होगा? (चिढ़े स्वर में) मेरी अपनी पसन्द की भी तो कोई कीमत है।

कान्तिलाल—लेकिन...

रूप—(बीच में ही) वे मुझे देखेंगे या कपड़ों को?

[कान्तिलाल गम्भीरता से उसकी ओर देखते हैं फिर क्षणभर बाद खुलकर हँस पड़ते हैं।]

कान्तिलाल—तेरा बचपन गया नहीं अभी तक! (प्रसन्न स्वर में) मनोज और तेरी जोड़ी बहुत अच्छी रहेगी। अब तो तेरा हाथ उसके हाथ में दे दूँ, तभी सुख-चैन की साँस ले सकूँगा।

[रूप का ध्यान पिता की ओर नहीं है। वह दाहिने द्वार की ओर देख रही है।]

कान्तिलाल—(मुस्कराकर) लगता है हमारी रानी बेटी मनोज की राह बहुत व्याकुलता से...

रूपी—(बीच में ही) पापा! ऐसी बातें करेंगे तो...तो...

कान्तिलाल—तो क्या करेगी मेरी रानी बेटी?

रूपी—मैं...मैं...रो दूँगी।

[कान्तिलाल हँसते हैं। उनकी हँसी से रूप की खीझ दूनी हो जाती है।]

रूपी—आप...आप हँसेंगे तो मैं सचमुच रो दूँगी।

कान्तिलाल—(हँसी रोककर) रोयें तेरे दुश्मन। तुझे तो हँस-हँसकर नाचना चाहिए, गाना चाहिए। जानती है, मनोज से शादी करने के लिए लाखों लड़कियाँ तरसती हैं?

[रूप कोई उत्तर नहीं देती। असन्तुष्टभाव से उठकर खिड़की के पास जाती है और दर्शकों की ओर पीठ करके वहीं खड़ी रहती है। कान्तिलाल उसकी ओर देखते हैं। उनके चेहरे पर उलझन के चिह्न उभरते हैं। पुत्री का व्यवहार उनकी समझ में नहीं आ रहा है।]

कान्तिलाल—(रूप के समीप जाकर उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए) क्या बात है, रूपी बेटी ?

रूप—(घूमकर) मुझे परेशान न कीजिये, पापा !

कान्तिलाल—(धीमे स्वर में) अच्छा बेटी ! मैं अन्दर जाता हूँ। मनोज आये तो मुझे बुला लेना।

[कान्तिलाल अन्दर जाते हैं। रूप कुछ देर तक सिर झुकाये खड़ी रहती है। फिर बाहर वाले द्वार की ओर बढ़ती है। द्वार का पर्दा हटाकर बाहर देखती है। पल भर बाद ही उसका चेहरा कमल-सा खिल जाता है और आँखें मुस्कराने लगती हैं। वह तेजी से बाहर चली जाती है। मंच खाली रहता है।]

रूप—(बाहर से) ओह विमल, मैं तो समझती थी तुम नहीं आओगे।

विमल—(बाहर से) तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, रूप !

[रूप और विमल का प्रवेश। विमल पाजामा-कुर्ता और चप्पल पहने है। बाल कलाकारों की तरह बढ़े हैं।]

रूप—ओह, तुम नहीं जानते...

विमल—(बीच में ही) भोला ने जैसे ही बताया कि तुमने याद किया है, सर पर पैर रखकर भागा आया हूँ। (रूप की ओर देखकर) तुम परेशान लग रही हो। खैर तो है ?

रूप—(रुद्ध कंठ से) मैं जिन्दा दफनाई जा रही हूँ, विमल !

विमल—क्या मतलब ?

रूप—पापा ने...

विमल—(रूप का हाथ अपने हाथों में लेकर बीच में ही) तुमने पापा से बात की थी ? (व्यग्रता से) क्या...क्या उन्होंने हमारे प्यार का गला घोंटने का निश्चय किया है ?

रूप—उन्होंने मेरा रिश्ता दूसरी जगह तय करने का निश्चय कर लिया है। (भावावेश में) विमल, क्या हमारे सपनों का महल ढह जायेगा ?

विमल—(रूप का हाथ छोड़कर रूखे स्वर में) यही शुभ-समाचार सुनाने के लिए बुलाया था ? (टहलता हुआ) ठीक है। मैं गरीब हूँ—लाचार हूँ। मेरे पास तुम्हें देने के लिए है ही क्या ?

रूप—मेरी जान ले लो, विमल, मगर ऐसा न कहो। तुम नहीं जानते, मेरा क्या हाल हो रहा है। सच, मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकती। (कोच पर बैठकर) अगर...अगर...पापा ने मेरी शादी किसी और से की तो...तो मैं जहर खा लूँगी, डूब मरूँगी, फाँसी लगा लूँगी।

विमल—आत्म-हत्या करना कायरता है।

रूप—(सिसककर) मैं बुज़दिल हूँ। अगर...अगर...बुज़दिल न होती तो पापा के सामने क्यों खामोश रहती ? (उठकर आतुरता से) विमल, कोई रास्ता निकालो ! मैं अँधेरे में भटक रही हूँ—मुझे कुछ दिखाई नहीं देता।

विमल—प्यार करना पाप नहीं है, रूप ! हमें अपने प्यार की रक्षा के लिए संघर्ष करना चाहिए। बोलो, है साहस ?

रूप—(विमल का हाथ हाथ में लेकर) तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में हो तो मैं सब-कुछ कर सकती हूँ, विमल, सब कुछ !

विमल—पिता से विद्रोह कर सकोगी ?

रूप—तुम साथ हो तो अवश्य कर सकती हूँ।

विमल—तो आओ, पहले हम साथ जीने-मरने की शपथ लें।

रूप—(विमल के साथ) हम साथ जियेंगे, साथ मरेंगे।

विमल—रूप, संसार की कोई शक्ति तुमको मुझसे अलग नहीं कर सकती। आज मेरी कला मुझे सदा-सदा के लिए मिल गयी।

रूप—(भावावेश में) मेरे कलाकार ! तुम्हारी कला जनम-जनम तक तुम्हारे साथ रहेगी।

कान्तिलाल—(अन्दर से) मनोज बाबू आ गये क्या ?

विमल—(धीमे स्वर से) विद्रोह का समय आ गया।

रूप—मुझ पर यकीन करो।

[कान्तिलाल का प्रवेश। विमल को देखकर चौंकते हैं।]

कान्तिलाल—आप......

रूप—क्या भूल गये, पापा ? इनकी पेन्टिंग्स आपने देखी थी—और गीत भी सुने थे।

कान्तिलाल—ओह...तुम्हारे सहपाठी मिस्टर विमल ?

रूप—हाँ, पापा ! आपको पेन्टिंग्स पसन्द आयी थी ?

कान्तिलाल—हाँ। (घड़ी की ओर देखकर) मनोज के आने का वक्त तो हो गया।

रूप—और गीत कैसे लगे थें, पापा ?

कान्तिलाल—गीत...। हूँ...अच्छे थे...अच्छे थे...। रूप बेटी, अन्दर जाकर देख, महराजिन ने नाश्ता बना लिया या नहीं।

रूप—(अनसुनी करके) और पापा यह पढ़ने में भी बहुत तेज हैं। हमेशा फर्स्ट आते हैं। है न कमाल की बात...?

कान्तिलाल—(रूप की बात अनसुनी करके) मनोज आता ही होगा।

[कान्तिलाल दायें द्वार के पास जाकर बाहर झाँकते हैं।]

रूप—(आगे बढ़कर) पापा, आप मेरी बात सुनते क्यों नहीं ?

कान्तिलाल—(मुड़कर) क्या है ?

[विमल रूप की ओर देखता है। उसकी दृष्टि का अर्थ है—'यही मौका है विद्रोह का, हिम्मत से काम लो।]

रूप—पापा, मैं मनोज से शादी नहीं कर सकती।

कान्तिलाल—(चौंककर) क्या कहा ?

रूप—मैं मनोज से शादी नहीं कर सकती।

कान्तिलाल—(क्रुद्ध स्वर में) क्यों नहीं कर सकती ?

रूप—मैं विमल से शादी करूँगी।

कान्तिलाल—(जैसे कानों पर विश्वास न हो) यह क्या हिमाक़त है ?

रूप—मैं सच कह रही हूँ, पापा ! हम दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं।

कान्तिलाल—(बिगड़ कर) यह लफंगा मेरा जमाई बनेगा ?

विमल—(आगे बढ़कर) आप मेरा अपमान कर रहे हैं।

कान्तिलाल—(डाँट कर) चुप रहो। (रूप से) बेटी, तुझे खान्दान की इज्जत का कोई ख्याल नहीं ?

रूप—(दृढ़ता से) खान्दान की इज्जत के लिए मैं अपनी ज़िन्दगी खराब नहीं कर सकती, अपने प्यार का गला नहीं घोंट सकती।

कान्तिलाल—(समझाते हुए) तू अभी नादान है, बेटी! (विमल की ओर संकेत करते) यह छोकरा तेरे भोलेपन का नाजायज़ फ़ायदा उठा रहा है।

रूप—पापा...

कान्तिलाल—यह तुझे नहीं, मेरी दौलत को चाहता है। (विमल से) तूने अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से रूपका मन भरमा लिया है। बोल, तू कितने रुपये चाहता है? मेरी बेटी की जिन्दगी खराब न कर।

विमल—(अपमानित होकर) अगर यह बात किसी और ने कही होती तो मैं जवाब देता, मगर...मगर...आप रूप के पिता हैं—मेरे पूज्य हैं। बाबूजी, मैं कलाकार हूँ और कलाकार चाँदी के टुकड़ों पर अपना दीन-ईमान, अपनी आत्मा, अपना राग-अनुराग नहीं बेचता। मैं आपकी दौलत नहीं, रूप को चाहता हूँ।

रूप—पापा, आप विमल को नहीं जानते। मैं जानती हूँ। हम दोनों का प्यार सच्चा है। (विनती के स्वर में) हमारे रास्ते में काँटे न बोइये, पापा! पापा! प्लीज़, आई प्रे...।

कान्तिलाल—मैं इस जैसे सैकड़ों कलाकारों को देख चुका हूँ। हुँ...बड़ा कलाकार बना है! (रूप से) जा अन्दर! मैं इस कलाकार के बच्चे को धक्के देकर बाहर निकालता हूँ।

विमल—(कड़े स्वर में) बाबूजी...

रूप—(चीखकर) पापा! मैं विमल के लिए ऐसा नहीं सुन सकती। हम दोनों साथ रहेंगे।

कान्तिलाल—(गरजकर) तो इस कोठी के दरवाजे तेरे लिए भी बन्द हो जायेंगे।

रूप—चिन्ता नहीं। (विमल का हाथ पकड़कर) चलो विमल, हम लोग कल ही सिविल मैरेज कर लेंगे।

कान्तिलाल—(घबरा कर) सिविल मैरेज!

विमल—जी हाँ। वह युग गया जब माँ-बाप लड़कियों को गाय-बकरियों की तरह गैरों को सौंप देते थे। आज लड़कियाँ स्वतंत्र हैं। कानून ने उन्हें मन-चाहे व्यक्ति से शादी करने की सुविधा दी है।

रूप—और मैंने अपना जीवन-साथी चुन लिया है। चलो विमल।

कान्तिलाल—(आगे बढ़कर) अपने बूढ़े पापा का ख्याल नहीं है तो मम्मी की आखिरी बात का तो ख्याल कर, रूपी। याद है, तेरी मम्मी ने मरते वक्त क्या कहा था ?

रूप—आपने भी मम्मी से कुछ वादा किया था, पापा ! भूल गये ? (विमल का हाथ छोड़ कर पिताकी ओर बढ़ती हुई) आपने मुझे हर तरह से खुश रखने का वादा किया था। विमल ही मेरी खुशी है—जिन्दगी है। (रुद्धकंठ से) अगर आज मम्मी होती तो...तो...

कान्तिलाल—(बीच में ही) अगर तेरी खुशी इसी में है कि...कि...इस... विमल के साथ शादी करे तो...तो...ऐसा ही होगा। तेरी मम्मी की आत्मा की शान्ति के लिए, मैं...मैं...खान्दान की इज्जत धूल में मिला दूँगा।

रूप—(प्रसन्नता से) पापा !

विमल—(आगे बढ़कर) तो हमें आशीर्वाद दीजिये कि हमारा दाम्पत्य-जीवन सुखी रहे।

कान्तिलाल—मेरा आशीर्वाद तुम दोनों के साथ है, मगर...

रूप—मगर क्या, पापा ?

कान्तिलाल—मैं मनोज को वचन दे चुका हूँ। (दुखी स्वर में) किस मुँह से इन्कार करूँगा !

विमल—आप उनकी चिन्ता न करें। उनसे हम निपट लेंगे।

रूप—हाँ, पापा ! यू डोण्ट वरी ऐट आल !

[नेपथ्य से कार के हार्न की ध्वनि आती है।]

कान्तिलाल—लगता है मनोज आ गया। तुम्हीं लोग उससे बात करना।

[कान्तिलाल तेजी से अन्दर जाते हैं। रूप और विमल प्रसन्नभाव से एक-दूसरे की ओर देखते हैं। दायें द्वार से मनोज आता है। रंग गोरा, बाल घुँघराले और व्यक्तित्व आकर्षक है। मक्खन जीन की पैन्ट, शार्कस्किन की बुशशर्ट और लोफर-शू पहने है। आँखों पर धूप का चश्मा है, जेब में पार्कर पेन है, उँगली में हीरे की अँगूठी है और कलाई पर रोमर घड़ी है।]

मनोज—(चश्मा उतारकर जेब में रखता हुआ) हलो, रूप !

रूप—हलो !

मनोज—पापा कहाँ हैं ?

रूप—अन्दर हैं। आइये, पहले आप दोनों का परिचय करा दें। (विमल की ओर संकेत करके) यह हैं मेरे क्लासफ़ेलो मिस्टर विमल और आप हैं मिस्टर मनोज।

मनोज—आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई।

विमल—मुझे भी। अच्छा हो अगर हम लोग बैठ जायें।

[तीनों बैठ जाते हैं]

रूप—मिस्टर विमल बहुत बड़े कलाकार हैं।

मनोज—(विस्मय से) अच्छा ! (विमल से) क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप किस कला के 'कार' हैं ?

विमल—जी, मैं गीत भी लिखता हूँ और चित्र भी बनाता हूँ।

मनोज—तब तो आप बहुत बड़े कलाकार हैं। आपसे परिचित होना मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

रूप—(मुस्कराकर) हमारे कलाकार बड़ी मुसीबत में फँस गये हैं।

मनोज—क्या बात है, मिस्टर विमल ? मुझे बताइये। शायद मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूँ। (रूप की ओर देखकर मुस्कराने के बाद) रूप के मित्र मेरे भी मित्र हैं।

रूप—मैं बताती हूँ। बात यह है कि हमारे कलाकार महोदय एक लड़की से प्यार करते हैं।

मनोज—क्या वह लड़की इन्हें नहीं चाहती ?

रूप—वह भी इन्हें जी-जान से चाहती है।

मनोज—फिर मुसीबत कैसी ?

विमल—लड़की के पिताजी किसी और को वचन दे बैठे हैं।

मनोज—तो क्या हुआ ? आप उन महाशय से मिलकर सारी बात उनके सामने रखिये।

विमल—क्या वे हमारा ख्याल करेंगे ?

मनोज—अगर उनमें इन्सानियत होगी तो जरूर करेंगे।

रूप—यदि...यदि आप उनकी जगह पर होते तो क्या करते ?

मनोज—(हँसकर) उस लड़की का हाथ खुद इनके हाथ में दे देता।

रूप—(विमल से हँसकर) मैंने कहा था न कि मनोज बाबू मनुष्य नहीं, देवता हैं।

मनोज—शरमिन्दा क्यों करती हो, रूप? मैं तो इन्सान हूँ—मामूली-सा इन्सान।

विमल—(उठकर) तो फिर अपनी इन्सानियत का परिचय दीजिये, मिस्टर मनोज! रूपका हाथ मेरे हाथ में देने की...

मनोज—(गम्भीरता से) यह क्या मज़ाक है ?

रूप—यह सच्चाई है, मनोज बाबू! हम एक-दूसरे को प्यार करते हैं। क्या... क्या आप हमारे बीच की दीवार बनेंगे ?

[मनोज सोफा से उठकर कभी रूप की ओर देखता है और कभी विमल की ओर। वह अत्यन्त गम्भीर है।]

रूप—(उठकर) जवाब दीजिये !

मनोज—आज पहली नहीं, दूसरी अप्रैल है।

विमल—यह हँसी नहीं है।

रूप—हमने शीघ्र ही शादी करने का फैसला कर लिया है।

मनोज—शादी...

विमल—जी हाँ। रूप आपसे नहीं, मुझसे शादी करना चाहती है। आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

मनोज—मुझे आपत्ति है भी नहीं। लेकिन...लेकिन क्या आप लोगों को पूरा यकीन है कि आपका फैसला सही है ?

विमल—क्या मतलब ?

मनोज—क्या आप सचमुच एक-दूसरे को प्यार करते हैं ?

रूप—विमल मेरी जिन्दगी है।

विमल—रूप मेरी प्रेरणा है, शक्ति है, कला है।

मनोज—(खुलकर हँसने के बाद) मेरा भी कुछ ऐसा ही ख्याल था।

विमल—जी...

मनोज—दिल के मामले भी अजीब होते हैं। अक्सर हम प्यार और प्यार करने की भावना में धोखा खा जाते हैं। (रूप और विमल उसकी ओर

न समझने के ढंग से देखते हैं।) मैं अपनी बात साफ कर दूँ। मेरा ख्याल है कि आप लोग एक-दूसरे को इतना प्यार नहीं करते जितना प्यार करने की भावना को।

रूप—मैं समझी नहीं।

मनोज—मिस्टर विमल तुम्हें नहीं, तुम्हारे सौन्दर्य को चाहते हैं।

विमल—आप...

मनोज—(मुड़कर) और रूप आपको नहीं, आपके गीतों और चित्रों को चाहती है।

रूप—दिस इज़ रॉंग !

विमल—एकदम बकवास !

मनोज—बुरा न मानिये। कालेज-जीवन का रोमांस एक रंगीन सपने से अधिक और कुछ नहीं होता।

विमल—आप हमारे प्यार की तौहीन कर रहे हैं।

रूप—हमने साथ जीने-मरने का प्रण किया है।

मनोज—जवानी के वादे आगे चलकर बादलों की तरह उड़ जाते हैं; जवानी का जोश दूध में आये उफान की तरह है और जवानी का प्यार बुलबुले की तरह क्षणिक और अस्थिर !

विमल—हमारा प्यार यौवन का आवेश मात्र नहीं है, मिस्टर मनोज !

रूप—प्रथम दर्शन में ही हम एक-दूसरे के हो गये हैं जैसे हम जनम-जनम के परिचित हों।

विमल—रूप के बिना मेरी कला निष्प्राण है।

मनोज—भावुकता की नींव पर खड़ा प्यार का महल ज़िन्दगी की मुसीबतों के हल्के झोंके से ताश के घर की तरह ढह जाता है। (जेब से सिग़रेट की डिब्बी और लाइटर निकाल कर डिब्बी विमल की ओर बढ़ाता हुआ) सिगरेट...!

विमल—धन्यवाद ! मैं सिगरेट नहीं पीता।

मनोज—(मुस्कराकर) कलाकार होकर सिगरेट नहीं पीते ! आश्चर्य है। (रूप की ओर मुड़कर) मुझे इजाज़त है !

[रूप सिर हिलाती है। मनोज एक सिगरेट सुलगाकर डिब्बी और लाइटर जेब में रख लेता है।]

मनोज—(धुँएँ का गोला बनाकर) आज का रोमांस इस धुँएँ की तरह है जिसमें कोई स्थायित्व नहीं और जो सदा हवा में उड़ता है।

विमल—(तेज स्वर में) आप जान-बूझकर मेरी भावना को ठेस पहुँचा रहे हैं।

मनोज—मेरी दृष्टि में भावना का कोई मूल्य नहीं।

विमल—और मेरी दृष्टि में जिस मनुष्य में भावना नहीं, वह मनुष्य नहीं, पशु है।

मनोज—(मुस्कराकर सहज स्वर में) अपनी-अपनी दृष्टि है।

विमल—(चिढ़कर) आप चाहते हैं कि रूप की शादी मुझसे नहीं, आपसे हो। आप...आप...मुझसे ईर्ष्या कर रहे हैं।

मनोज—ईर्ष्या होती अगर मैं समझता कि आप रूप को सचमुच सुखी रख सकेंगे।

रूप—मैं विमल के साथ हर हालत में सुखी रहूँगी।

मनोज—काश, यह सच हो सकता! (सिगरेट खिड़की के बाहर फेंककर सहसा विमल की ओर मुड़ता हुआ) मिस्टर विमल, क्या आप रूप को खुश रख सकेंगे?

विमल—रूप के लिए मैं आकाश से चाँद-तारे भी ला सकता हूँ।

मनोज—(दार्शनिकों की-सी मुद्रा में) काश, चाँद-तारे मनुष्य को सुखी रख सकते। भाई जान, आकाश के चाँद-तारे आपके गीतों और चित्रों तक ही ठीक हैं। रूप को चाँद-तारे नहीं, बँगला चाहिए, कार चाहिए, नौकर-चाकर चाहिए, रेशमी कपड़े और सुनहरे जेवर चाहिए। क्या आपके पास इतने साधन हैं?

विमल—मेरी निर्धनता की हँसी न उड़ाइये।

मनोज—मैं सच्चाई बयान कर रहा हूँ। रूप जिस तरह की जिन्दगी बिता रही है, वैसी...

रूप—(बीच ही में) मैं अपनी सभी आदतें बदल डालूँगी। विमल के लिए मैं सब-कुछ करने को तैयार हूँ।

मनोज—आदतें आसानी से नहीं बदलतीं। (दायें द्वार के पास जाकर) कहने

से करना कठिन है। (बाहर देखकर उँगली से संकेत करता हुआ) इधर देखिये, मिस्टर विमल !

[विमल उसके पास जाकर बाहर की ओर देखता है।]

मनोज—वह क्या है ?

विमल—तितली ।

मनोज—हाँ ! सुन्दर, रंगीन और चंचल तितली ! जानते हैं, उसकी जिन्दगी क्या है ?

विमल—जी...(रूप की ओर देखने लगता है) जी...।

मनोज—(सोफे के पास आकर) कैसे कलाकार हैं आप ? जनाब, तितली की जिन्दगी है खुली हवा में उड़ना, मस्ती से इठलाना ! मैं जानता हूँ, आप चाहें तो उस तितली को पकड़ सकते हैं मगर...मगर...क़ैद करके आप उसे जिन्दा नहीं रख सकते। वह मर जायेगी, उसका दम घुट जायेगा।

विमल—(आगे बढ़कर) मगर तितली और रूप का...

मनोज—क्या सम्बन्ध है, यही पूछना चाहते हैं ? रूप भी उस हसीन और नाज़ुक तितली की तरह है। शान-शौकत की जिन्दगी...

रूप—आप...आप...

मनोज—आज भावावेश में तुम कुछ भी कहो, पर कल पछताओगी। तंग-अँधेरी कोठरी में तुम्हारा दम घुट जायेगा। एक राजकुमारी कभी दासी नहीं बन सकती।

विमल—क्या...क्या यह सच है ? क्या तुम साधारण स्थिति में जिन्दा नहीं रह सकतीं ? क्या तुम्हें कार चाहिए, बँगला चाहिए, जेवर चाहिए ?

[रूप कुछ कहने के लिए मुँह खोलती है मगर फिर बन्द कर लेती है।]

मनोज—(रूप से) क्या तुम फटे-पुराने कपड़े पहन सकती हो ? भूखी रह सकती हो ? अपने हाथों घर का काम कर सकती हो ?

[रूप उत्तर नहीं देती। सिर झुका लेती है।]

मनोज—(विमल से) क्या आप रूप को वह शान-शौकत दे सकते हैं जो उसकी जिन्दगी है ?

[विमल मौन रहता है ।]

मनोज—क्या आप तितली को क़ैद करने के शौक में उसके पंख तोड़ डालना चाहते हैं, उसे हमेशा के लिए अपंग करना चाहते हैं ?

[विमल रूप की ओर देखता है । रूप सिर झुकाये खड़ी है ।]

मनोज—आप यह न समझियेगा कि मैं स्वार्थ के लिए ऐसा कह रहा हूँ । मेरा इरादा दीवार बनने का क़तई नहीं है । अगर आप समझते हैं कि शादी करके आप लोग सुखी रह सकेंगे तो...तो...मेरी शुभ-कामनायें आपके साथ हैं ।

विमल—(आगे बढ़कर रूप से) क्या...क्या तुम मेरे साथ सुखी...

रूप—(बीचमें ही) मनोज बाबू की बातों ने मेरे दिल में शक पैदा कर दिया है । लगता है, हमारी भावुकता मूर्खता थी ।

मनोज—(हँसकर) हर आदमी भावुक मूर्ख होता है—सेन्टीमेन्टल फूल !

रूप—विमल, हमें अपने फैसले पर फिर विचार करना चाहिए ।

विमल—(रूप की ओर विचित्र दृष्टि डाल कर मनोज से) आप ठीक कहते थे, मिस्टर मनोज ! रूप भी एक रंगीन तितली है । मेरी बधाई स्वीकार कीजिये । (रूप से) भगवान् तुम्हें सुखी रक्खे ।

रूप—मुझसे नाराज़ तो नहीं हो, विमल ? (विमल नकारात्मक सिर हिलाता है) नो इल फीलिंग्स ?

विमल—नो इल फ़ीलिंग्स !

[विमल बाहर जाने के लिए द्वार की ओर बढ़ता है ।]

मनोज—हमारी शादी में आना न भूलना, कलाकारजी !

रूप—यू सेव्ड मी फ्राम डिसास्टर ! आई एम ग्रेटफुल ! (मनोज का हाथ पकड़-कर) चलो, पापाको यह खुशखबरी सुनायें ।

मनोज—(मुस्कराकर) ऐज़ यू विश, माई लिटिल बटरफ्लाई !

[विमल तेजी से बाहर जाता है ।]

[दोनों अन्दर जाने के लिए द्वार की ओर बढ़ते हैं । धीरे-धीरे यवनिका गिरती है ।]

मंडल, मवेशी और मनुष्य

[व्यंग्यात्मक एकांकी]

पात्र

दयाचन्द—जीवदया-मंडल के अध्यक्ष; अवस्था ४५ वर्ष।
लालू —मंडल का चपरासी; अवस्था ४० वर्ष।
कल्लू —ताँगे वाला; अवस्था ४५ वर्ष।
रहमान —ठेले वाला; अवस्था ३५ वर्ष।

स्थान

जीव-दया-मंडल का कार्यालय

समय

दोपहर

[कार्यालय वर्गाकार है। सामने की दीवार पर महात्मा गांधी का विशाल चित्र टँगा है। उसके आस-पास, ऊपर-नीचे अनेक पोस्टर लगे हैं। किसी में "अहिंसा परमोधर्मः" लिखा है, किसी में—"जीव मात्र पर दया करना हमारा धर्म है," किसी में प्राणि-मात्र को अपना सा समझने की शिक्षा दी गयी है तो किसी में पशुओं पर दया करके परमात्मा को प्रसन्न करने का सन्देश ! सभी पोस्टर आकर्षक हैं।

कमरे के मध्य में एक बड़ी मेज है। मेज पर कागज, कलम-दावात, पेपरवेट, घण्टी आदि के अतिरिक्त फोन भी है। मेज के तीन तरफ तीन कुर्सियाँ हैं। सामने वाली कुर्सी गद्दीदार है, शेष दो साधारण हैं। दाहिनी ओर, दीवार से सटी एक अल्मारी है, जिसमें कुछ फायलें कायदे से रक्खी हैं। वायीं ओर द्वार है जिस पर पर्दा पड़ा है। वायें कोने में एक छोटी मेज पर विजली का पंखा है जो तेजी से चल रहा है।

पर्दा उठने पर दर्शकों की ओर मुँह किये हुए, वीच की कुर्सी पर दयाचन्द वैठे हुए दिखाई पड़ते हैं। उनका रंग गोरा और स्वास्थ्य वहुत अच्छा है। खद्दर का चूड़ीदार पायजामा, कुर्ता और शेरवानी पहने हैं। सिर पर सफेद नुकीली टोपी है। वे कोई कागज ध्यान से देख रहे हैं। सहसा फोन की घण्टी वजती है। दयाचन्द का ध्यान भंग हो जाता है।]

दयाचन्द—(चोंगा उठाकर) हलो, मैं जीवदया-मण्डल से दयाचन्द वोल रहा हूँ। जी—? रांग नम्बर ! (चोंगा रखकर, झुँझलाये स्वर में) जव देखो तव गल्त नम्बर ! सारा वक्त इसी में खराव हो जाता है। (मेज पर रक्खी घण्टी जोर से वजाकर) लालू...! अवे, कहाँ मर गया जाकर ?

लालू—(वाहर से) आया सरकार !

[लालू का प्रवेश। वह घुटनों तक धोती और वंडी पहने है। वस्त्रों पर धूल जमी है। बाल पक गये हैं, शरीर दुर्वल है, चेहरे पर उदासी और थकान के चिह्न हैं। ४० वर्ष की अवस्था में ही ६० वर्ष का लगता है।]

दयाचन्द—(कठोर स्वर में) वड़े वावू आये ?

लालू—(नम्र स्वर में) अभी तो नहीं आये, सरकार !

दयाचन्द—(क्रुद्ध होकर) अभी तक नहीं आये ? हूँ...घर की खेती समझ रक्खी है। एक-एक को जवाव दे दूँगा।

लालू—सरकार, उनकी विटिया की तवीयत...

दयाचन्द—यह सब बहाने हैं ! मैं अच्छी तरह जानता हूँ। रोज किसी-न-किसी की तबीयत खराब रहती है। कोई अपना फर्ज नहीं समझता। (अपेक्षाकृत धीमें स्वर में) इस तरह मण्डल का काम कैसे चलेगा ?

लालू—जी...

दयाचन्द—जी क्या ? मुझे हर महीने दो-चार सौ रुपये घर से लगाने पड़ते हैं। समय नष्ट होता है, सो अलग ! अगर बड़े बाबू सब काम सँभाल लेते तो... तो...मैं कुछ और काम करता। अभी इस शहर में सेवा-कार्य के लिए बहुत क्षेत्र है। (खिन्न स्वर में) मैं इसी मंडल को लेकर तो नहीं बैठा रह सकता।

[लालू मौन रहता है।]

दयाचन्द—देखो, बड़े बाबू आयें तो उनसे कह देना कि आज ही टेलीफोन वालों को चिट्ठी लिख दें। दिन में पचास बार गलत नम्बर मिलता है।

लालू—बहुत अच्छा, सरकार !

[फोन की घण्टी फिर बजती है।]

दयाचन्द—(चोंगा उठाकर) हलो...! कौन, मुन्नू की माँ ? तुमसे हजार बार कह चुका हूँ कि दफ्तर में फोन न किया करो। क्या, खाना ठण्डा हो रहा है ? होने दो। हम जन-सेवक हैं और वह जन-सेवक ही क्या, जिसे समय पर गर्म खाना मिल गया। नहीं, तुम लोग खा लो। क्या...चारा ? हाँ, भेज दूँगा। (चोंगा रखकर लालू से) देखा तुमने ? हमें तो वक्त पर खाना नहीं मिल पाता और बड़े बाबू घर में पड़े आराम करते हैं...। (मुँह बनाकर) बच्ची की तबीयत खराब है...। हुँ...।

[बाहरसे तहमद और बनयाइन पहने हुए कल्लू आता है। उसके बाल रूखे और दाढ़ी बढ़ी हुई है। हाथ में चाबुक है।]

दयाचन्द—(कठोर स्वर में) क्या है...?

लालू—सरकार, यह कल्लू ताँगे वाला है। इसका घोड़ा...

दयाचन्द—(बीच में ही कल्लू से) तो तुम्हीं अपने कमजोर और बीमार घोड़े से मशीन की तरह काम लेते हो ? अगर तुम्हें घोड़े की जगह ताँगे में जोत

दिया जाये तो सात-सात सवारियाँ ढो सकते हो ?

कल्लू—हुजूर, भूल हुई...

दयाचन्द—(बीच में ही) सवाल भूल का नहीं, सिद्धान्त का है। तुम लोग यह समझते ही नहीं कि जानवरों में भी हमारी तरह ही जान है। वे बिचारे बोल नहीं सकते, इसका यह मतलब नहीं कि वे सुख-दुख का अनुभव ही नहीं करते।

कल्लू—हुजूर...

दयाचन्द—(डाँटकर) चुप रहो। हमारी संस्था ने बेजुबान जानवरों की सेवा का व्रत लिया है। अब तुम लोग उन पर अत्याचार नहीं कर सकते। समझे...?

कल्लू—समझ गया, हुजूर, सब कुछ समझ गया।

दयाचन्द—अभी तक यह मोटी-सी बात तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आयी थी ?

कल्लू—(चिढ़कर) हुजूर, हम ताँगे वाले अपने जानवरों को जान से ज्यादा चाहते हैं। खुद भूखे रहकर, उनका पेट भरते हैं। मगर...मगर मजबूरी इन्सान से सब कुछ करा लेती है।

[बाहर से कुछ पुरुषों का स्वर आता है। लालू तत्काल बाहर चला जाता है।]

दयाचन्द—मजबूरी का नाम लेकर तुम लोग...

कल्लू—(बीच में ही) मैं सच कह रहा हूँ, हुजूर। बसों और रिक्शों की वजह से अब सवारियाँ ताँगे की तरफ देखती भी नहीं। दो दिन से एक पाई भी नहीं मिली थी। घोड़े के साथ-साथ बच्चे भी भूखे रहे। (कण्ठ भर आता है।) आज...आज सुबह सवारियाँ...

दयाचन्द—(बीच में ही) भूखे घोड़े पर सात सवारियाँ लादते शर्म नहीं आयी ?

कल्लू—हुजूर, पेट की आग...

दयाचन्द—हुँ··पेट की आग ! जाओ, ले जाओ अपना घोड़ा। मगर ऐसी भूल फिर न हो। (कल्लू कृतज्ञता से द्वार की ओर बढ़ता है) और सुनो, चपरासी को एक रुपया देते जाना !

कल्लू—(रुककर) हुजूर...

दयाचन्द—हुजूर-हुजूर से काम नहीं चलेगा ! हमने तुम्हारी तरह घोड़े को भूखा नहीं रक्खा है। डेढ़-दो रुपये का दाना-चारा खिलाया है। जाओ !

[कल्लू का प्रस्थान]

दयाचन्द—(गान्धीजी के चित्र की ओर देखकर) बापू, इस अभागे देश के वासियों में सद्बुद्धि कब आयेगी ?

[बाहर से रहमान का प्रवेश। वह तहमद और बंडी पहने है। पैर धूल में सने हैं। शरीर पसीने से लथपथ है।]

रहमान—हुजूर...

दयाचन्द—(चौंककर) क्या है ?

रहमान—हुजूर, मेरा ठेला...मैं मर जाऊँगा, हुजूर ! (गिड़गिड़ाकर) बाल-बच्चे मर जायेंगे, हुजूर !

दयाचन्द—हुजूर-हुजूर की रट क्यों लगा रक्खी है ? साफ-साफ कहो, क्या बात है ?

रहमान—हुजूर...

[बाहर से लालू का प्रवेश। वह एक रुपये का नोट मेज पर रखकर उसे पेपरवेट से दबा देता है।]

दयाचन्द—लालू, यह कौन है और क्या चाहता है ? (डाँटकर तुम जानते हो, मेरा वक्त कितना कीमती है। हर एक को दफ्तर में क्यों घुस आने देते हो ?

लालू—(रहमान से) चलो, जो कुछ कहना है, बड़े बाबू से कहना।

रहमान—(हाथ जोड़कर दयाचन्द से) बड़े बाबू न जाने कब तक आयेंगे, हुजूर ! आप ही मेरी अरज सुन लीजिये। बाल-बचोंवाला आदमी हूँ, हुजूर !

दयाचन्द—(बीच में ही लालू से) क्या मामला है ?

लालू—सरकार, यह ठेले पर बहुत ज्यादा बोझ लादे था। मुन्शी जी, इसे यहाँ ले आये ?

दयाचन्द—(बिगड़ कर) क्यों, इस तपती दुपहरी में ज्यादा बोझ क्यों लादा ?

रहमान—(गिड़गिड़ा कर) हुजूर, कमाऊँगा नहीं तो बाल-बच्चों को खिलाऊँगा क्या ?

दयाचन्द—अपने बाल-बच्चों को जिन्दा रखने के लिए दूसरे की जान लेना चाहते हो ? अगर भैंसा मर जाता तो...?

रहमान—(आश्चर्य से) भैंसा...?

दयाचन्द—हाँ, भैंसा ! क्या उसके जान नहीं है ?

रहमान—मगर मेरे ठेले में भैंसा नहीं जुता था, हुजूर !

दयाचन्द—भैंसा न सही, बैल सही ! बात एक ही है।

रहमान—बैल भी नहीं था, हुजूर !

दयाचन्द—घोड़ा, गधा, ऊँट, भेड़, बकरी कुछ भी सही। सभी जानवर एक से हैं, और सभी के अन्दर हमारी तरह ही जान है। समझे ?

रहमान—मगर हुजूर, कुछ मेरी भी तो सुनिये।

दयाचन्द—सुनूँ क्या, अपना सिर...?

रहमान—हुजूर, ठेले में कोई जानवर नहीं, खुद मैं जुता था।

[दयाचन्द विस्मय से रहमान की ओर देखते हैं, फिर प्रश्न-भरी दृष्टि लालू की ओर घुमाते हैं।]

लालू—यह ठीक कह रहा है, सरकार। ठेला यही खींच रहा था।

दयाचन्द—(चीख कर) तो मुन्शीजी इसे यहाँ क्यों ले आये ? उन्हें मालूम नहीं कि हमारा मण्डल आदमियों की नहीं, पशुओं की सेवा करता है ? (उठकर क्रुद्ध मुद्रा में टहलते हुए) अजब नामाकूलों से पाला पड़ा है।

रहमान—(डरे स्वर में) तो मैं जाऊँ, हुजूर !

दयाचन्द—जाओ, और जितना बोझ लादे हो उतना ही और लाद लो। हमारी बला से।

[रहमान सलाम करता हुआ चला जाता है। दयाचन्द फिर कुर्सी पर बैठ जाते हैं। लालू सहमा हुआ खड़ा रहता है]

दयाचन्द—मुन्शीजी कहाँ हैं ?

लालू—वे तो ठेले वाले को यहाँ छोड़कर खाना खाने चले गये, सरकार !

दयाचन्द—(मुँह बनाकर) खाना खाने चले गये। जब देखो तब खाना, खाना, खाना ! जैसे खाने के सिवाय और कुछ है ही नहीं दुनिया में। (फोन की घन्टी बजती है।) मैं तो इस टेलीफोन से परेशान हूँ। (चोंगा उठाकर) हलो···ओह, शर्मा जी बोल रहे हैं। नमस्कार ! जी...क्या कहा ? तीस हजार ? सरकार ने हमारे मण्डल को मान्यता देकर तीस हजार रुपये की सहायता दी है ? मैं कृतज्ञ हूँ आपका। अरे नहीं, मैं जानता हूँ, यह सब

आपकी ही चेष्टाओं का फल है। आप मुझे व्यर्थ ही श्रेय दे रहे हैं। मैं तो अपना धर्म पूरा करता हूँ। जी...? हाँ, हाँ। शाम को अवश्य आइये। तभी बातें होंगी। अच्छा नमस्कार।

[दयाचन्द चोंगा रख देते हैं। उनके चेहरे पर हर्ष के भाव हैं।]

लालू—यह तो बहुत अच्छी खबर है, सरकार।

दयाचन्द—खाक़ अच्छी है। सहायता दी भी तो सिर्फ तीस हजार की। कम से कम एक लाख तो मिलने चाहिये थे। इस शहर में निःस्वार्थ सेवा करने वाली संस्था और है ही कौन?

लालू—फिर भी सरकार, तीस हजार की रकम कम नहीं होती।

दयाचन्द—मगर पूरी रकम हमारे मण्डल को मिले तब न! (रुककर) शर्मा जी ने काफी कोशिश करके यह रुपया दिलवाया है। वे भी कम से कम दस-बारह हजार चाहेंगे ही।

लालू—(विस्मय से) शर्मा जी तो नामी-गरामी नेता हैं, सरकार। फिर भला वे...

दयाचन्द—(बीच में ही) अरे, इन नेताओं के काले कारनामे तुम क्या जानो? (हँसकर) अगर सब लोग हमारी तरह सच्चे जन-सेवक बन जायँ तो फिर देश का उद्धार ही न हो जाये।

[लालू मौन रहता है। उसके चेहरे पर वेदना, घृणा और व्यंग्य के भाव हैं। फोन की घन्टी बजती है।]

दयाचन्द—(चोंगा उठाकर) हलो! कौन, मुन्नू की माँ! आ रहा हूँ, बाबा, आ रहा हूँ। क्यों जान खा रही हो?(चोंगा रखकर) लालू, मैं घर जा रहा हूँ, शाम को शर्मा जी की पार्टी है। कुछ और लोग भी आयेंगे। बड़े बाबू और मुन्शी जी से कह देना, इन्तजाम के लिये घर पर पहुँच जायें।

लालू—बहुत अच्छा सरकार!

दयाचन्द—(उठकर) और तुम दो गट्टर चारा और दाना अभी घर पहुँचा दो।

लालू—(विनीत स्वर में) सरकार, इस धूप में...

दयाचन्द—(बीच में ही) तुमने ठेले वाले की बात नहीं सुनी? पेट के लिये सब कुछ करना पड़ता है? और फिर सिर्फ दो मील की ही तो बात है। (मेज से नोट उठाकर) घोड़े को क्या खिलाया था?

लालू—आपने सिर्फ़ सूखी घास देने का हुकुम दिया था, सरकार।

दयाचन्द—ठीक है, ठीक है। मुश्किल से चार आने की घास खर्च हुई। (नोट उसकी ओर बढ़ाकर) यह लो, चवन्नी बड़े बाबू को दे देना, और बारह आने खुद रख लेना।

लालू—(नोट लेकर) लेकिन, सरकार...

दयाचन्द—(बीच में ही) मैंने तुम्हें ऊपर से कमाने का रास्ता बता दिया। अब मुझसे कभी तनख्वाह बढ़ाने के लिए न कहना। समझे? मण्डल के पास पन्द्रह रुपये महीने से ज्यादा देने के लिये फण्ड नहीं है।

[दयाचन्द द्वार की ओर बढ़ते हैं।]

लालू—(आगे बढ़कर) लेकिन सरकार, मैं इस तरह की एक पाई भी नहीं चाहता। मेरी तनखा...

दयाचन्द—(मुड़कर) अगर भूखों मरना चाहते हो तो मरो। मेरी बला से। बारह आने बड़े बाबू और मुन्शीजी को दे देना। वे तुमसे ज्यादा समझदार हैं।

लालू—(आगे बढ़कर याचना के स्वर में) सरकार...

दयाचन्द—(तेज स्वर में) यह न भूलो कि हमारा मण्डल मवेशियों पर दया करने के लिये बना है, मनुष्यों पर नहीं।

[दयाचन्द का प्रस्थान। लालू साश्रुनयनों से कभी द्वार की ओर देखता है, कभी गान्धीजी के चित्र की ओर। धीरे-धीरे उसके चेहरे पर घृणा और विद्रोह के भाव उभरते हैं और वह पागलों की तरह पहले नोट के टुकड़े करता है फिर दीवार पर लगे पोस्टरों को फाड़ने लगता है। तभी धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।]

पप्पू

[बाल-मनोविज्ञान पर आधारित एकांकी]

पात्र

डैडी —अवस्था ३६ वर्ष।
मम्मी —अवस्था २६ वर्ष।
पप्पू —अवस्था १० वर्ष।
चेरी —अवस्था ६ वर्ष।

स्थान

घर का एक कमरा

समय

प्रातःकाल

[सामने वाली दीवार में एक नीची और लम्बी खिड़की है, जिसका निचला आधा भाग हरे पर्दे से ढका है। खिड़की के ऊपर दीवार में बिजली से चलने वाली गोल घड़ी लगी है, जिसमें दस बजकर दस मिनट हुए हैं। उसी दीवार से सटा हुआ एक तख्त पड़ा है जिस पर दरी-चादर बिछी है। कमरे के मध्य में एक नीची गोल मेज है जिस पर हरा मेजपोश बिछा है। मेज पर एक सुन्दर फूलदान रक्खा है जिसमें ताजे फूलों का गुलदस्ता लगा है।

कमरे में दो द्वार हैं। बायीं ओर का द्वार अन्दर और दायीं ओर का बाहर जाने के लिए है। दोनों पर हरे पर्दे पड़े हैं।

पर्दा उठने पर हम बेबी को अपनी ओर मुँह किये हुए बैठी देखते हैं। वह छपी हुई फ्राक पहने हैं। उसके पास ही तख्त पर टूटी हुई गुड़िया पड़ी है। बेबी दोनों हाथों से आँखें मल-मलकर सिसक रही है। उसके पास ही क्रुद्ध मुद्रा में पप्पू खड़ा है। वह कमीज-नेकर पहने है। उसकी धमकी-भरी दृष्टि बेबी की ओर है।]

पप्पू—नहीं चुपेगी ?

बेबी—(सिसककर) तुमने मेरी गुड़िया क्यों तोड़ी ? ऊँ...ऊँ...ऊँ...

पप्पू—मैं तेरे सब खिलौने तोड़ डालूँगा।

बेबी—मैं डैडी से कह दूँगी।

पप्पू—(गाल पर तमाचा मारकर) मेरी शिकायत करेगी ?

[बेबी जोर से सिसकने लगती है। अन्दर डैडी का स्वर—"क्यों रो रही हैं, बेबी ?" आता है।]

पप्पू—(धमकी-भरे स्वर में) अगर डैडी से शिकायत की तो और मारूँगा।

[बेबी सहम जाती है। अन्दर से डैडी आते हैं। वे कोट-पैन्ट पहनकर दफ्तर जाने के लिए तैयार हैं।]

डैडी—(बेबी के पास बैठ कर प्यार से) क्या हुआ, बेबी ?

[बेबी भीत दृष्टि से पप्पू की ओर देखती है।]

डैडी—(पप्पू से) तूने फिर मारा बेबी को ?

पप्पू—मैंने कब मारा ? बेबी दौड़ रही थी, गिर गयी। इसीसे पूछ लीजिये।

डैडी—(बेबी के सिर पर हाथ फेर कर) पप्पू सच कह रहा है ?

[बेबी सिर हिलाती है।]

डडी—देखूँ तो, कहाँ चोट लगी है !

[बेबी भोलेपन से गाल आगे कर देती है।]

डैडी—(चौंककर) अरे, यह तो थप्पड़ का निशान है ! (पप्पू से) क्यों बे, एक तो बेबी को मारता है और ऊपर से झूठ बोलता है। (उठकर पप्पू का कान पकड़ कर) क्यों, और उठायेगा बहन पर हाथ ?

पप्पू—बेबी मेरी बहन नहीं है।

डैडी—(कड़े स्वर में) क्या कहा ?

पप्पू—बेबी मेरी बहन नहीं है।

डैडी—(पप्पू के गाल पर जोर से तमाचा मारकर) बेबी तेरी बहन नहीं है ?

पप्पू—(चोट से तिलमिलाकर) हाँ, नहीं है, नहीं है।

[डैडी पप्पू को मारते हैं।]

बेबी—(उठकर) डैडी, भैया को मत मारिये, मत मारिये। (ऊँचे स्वर में) मम्मी ! मम्मी !!

[अन्दर से मम्मी आती हैं। वे छपी हुई इकलाई और ब्लाउज पहने हैं। वे दौड़कर पप्पू को बचाती हैं।]

मम्मी—(डैडी से) तुम्हें क्या हो गया है ? जब देखो तब पप्पू को पीटते ही रहते हो।

डैडी—(क्रुद्ध स्वर में) इसके लक्षण तो देखो। कहता है—बेबी मेरी बहन नहीं है।

मम्मी—(पप्पू को समझाती हुई) बेटा, ऐसी बात नहीं कहते। बेबी तुम्हारी बहन है।

पप्पू—(उसी स्वर में) बेबी मेरी बहन नहीं है।

डैडी—तुम हट जाओ बीच से। मैं अभी इसका दिमाग सही कर दूँगा।

मम्मी—मारने से कुछ नहीं होगा। (पप्पू के सिर पर प्यार से हाथ फेरकर) बेटा, अपनी मम्मी की बात नहीं मानोगे ?

पप्पू—(अलग हटकर) तुम मेरी मम्मी नहीं हो।

डैडी—सुन लिया ? मैं कहता हूँ, बिना मरम्मत किये...

मम्मी—(बीचमें ही) अगर पप्पू पर हाठ उठाया तो बुरा होगा, हाँ। (पप्पू से) बेटा, तुमसे किसने कहा कि मैं तुम्हारी मम्मी नहीं हूँ ?

पप्पू—मैं जानता हूँ ! मेरी मम्मी मर गयी। तुम (बेबी की ओर संकेत करके) उसकी मम्मी हो।

मम्मी—नहीं, बेटा ! यह बुरी बात है। मैं तुम्हारी भी मम्मी हूँ और बेबी की भी।

पप्पू—तुम झूठ बोलती हो। मेरी मम्मी तो मर गयी। तुम मेरी मम्मी नहीं हो। सब यही कहते हैं।

मम्मी—कौन कहते हैं ?

डैडी—पास-परोसवाले कहते होंगे और कौन कहेगा ? इन्हीं लोगों ने तो इसका दिमाग खराब कर दिया है। (पप्पू से डाँटकर) अगर आज से तू किसी के भी घर गया तो पैर तोड़ दूँगा। समझा...?

मम्मी—पप्पू बेटा, तुम और लोगों की बातें न सुना करो। (स्नेह से) क्या मैं तुम्हें प्यार नहीं करती ? क्या तुम्हें बेबी से भी ज्यादा अच्छी चीज़ें नहीं देती ?

[पप्पू सिर झुकाये खामोश खड़ा रहता है।]

डैडी—तुम्हारे लाड़-प्यार ने ही इसे बिगाड़ दिया है। अगर शुरू से ही सख्ती बरती होती तो...

मम्मी—(बीच में ही) बेबी से ज्यादा समझती हूँ तब तो पास-परोस वालों का यह हाल है, अगर सख्ती करती तो न जाने क्या होता ? (घड़ी की ओर देखकर) आप दफ्तर जाइये। मैं पप्पू को समझा दूँगी। मेरा राजा बेटा अपनी मम्मी की बात जरूर मानेगा।

डैडी—(पप्पू की ओर घूरकर) अगर तूने फिर कभी बेबी को मारा तो घर से निकाल दूँगा। हुँ...। बेबी मेरी बहन नहीं है। (बाहर वाले द्वार की ओर बढ़ते हुए) बहन को दुश्मन समझता है ! गधा कहीं का !

[डैडी का प्रस्थान]

मम्मी—बेबी बेटी, पप्पू तुम्हारा कौन है ?

बेबी—(हर्ष से) भैया !

मम्मी—पप्पू बेटा, बेबी तुम्हारी कौन है ?

पप्पू—कोई नहीं।

मम्मी—(चौंककर) क्या...?

पप्पू—हाँ, कोई नहीं। तुम भी मेरी कोई नहीं हो। डैडी भी मेरे कोई नहीं हैं। मैं किसी का कुछ नहीं हूँ।

मम्मी—तुम मेरे बेटे नहीं हो ?

पप्पू—नहीं !

मम्मी—मुझे मम्मी नहीं कहोगे ?

पप्पू—नहीं, नहीं, नहीं !

मम्मी—(कृत्रिम रूठने के भाव से) अच्छा, तो मैं भी तुमसे रूठ जाऊँगी; तुम्हें खिलौने नहीं दूँगी और...

पप्पू—मुझे नहीं चाहिए खिलौने।

[पप्पू अन्दर चला जाता है।]

मम्मी—(तख्त पर बैठकर बेबी को अपने पास बैठाती हुई) बेबी, तूने डैडी से पप्पू की शिकायत की थी ?

बेबी—नहीं, मम्मी ! डैडी ने मेरा गाल देखकर...

मम्मी—(बेबी का गाल सहलाकर) मामूली चोट है। ठीक हो जायेगी। बेटी, भैया की शिकायत नहीं करनी चाहिए।

[बेबी समझने के आशय से सिर हिलाती है।]

मम्मी—(उठकर) अब तुम खेलो। मैं जरा काम निपटा लूँ।

[मम्मी अन्दर जाती हैं। बेबी अपनी टूटी हुई गुड़िया को ठीक करने का यत्न करती है। तभी अन्दर से पप्पू आता है।]

बेबी—(खुश होकर) आओ भैया, छुक-छुक गाड़ी खेलें।

[पप्पू रूठा हुआ खामोश खड़ा रहता है।]

बेबी—(उठकर पप्पू के पास जाती हुई) हमारे संग नहीं खेलोगे ?

पप्पू—(तेज स्वर में) नहीं।

बेबी—आज खेल लो, भैया, फिर न खेलना।

पप्पू—(बेबी के गाल पर तमाचा मारकर) फिर कहा भैया ! मैं तेरा भैया नहीं हूं !

बेबी—तुम मुझे चाहे जितना मारो मगर मैं भैया कहूँगी । हाँ !

[बेबी पप्पू का हाथ पकड़ती है । पप्पू हाथ झटककर आगे बढ़ता है । उसकी ठोकर से फूलदान गिरते-गिरते बचता है ।]

बेबी—अगर (फूलदान की ओर संकेत करके) ये गिर जाता तो...

पप्पू—(अकड़कर) तो क्या होता ? मैं किसी से नहीं डरता । मैं जो चाहूँगा करूँगा । तू कौन होती है बोलने वाली ?

बेबी—मुझे क्या, तोड़ डालो ।

पप्पू—हाँ, हाँ ! तोड़ूँगा । देखूँ, कोई मेरा क्या कर लेगा ।

पप्पू फूलदान उठाकर फर्श पर पटक देता है । फूलदान टूट जाता है । उसके टुकड़े इधर-उधर बिखर जाते हैं ।]

मम्मी—(अन्दर से) यह क्या तोड़-फोड़ मचा रक्खी है ?

बेबी सहमी दृष्टि से पहले द्वार की ओर देखती है, फिर पप्पू की ओर । पप्पू खामोश खड़ा है । अन्दर से मम्मी आती हैं ।]

मम्मी—(कड़े स्वर में) यह फूलदान किसने तोड़ा ?

[पप्पू और बेबी सिर झुकाये खड़े हैं ।]

मम्मी—(पप्पू से) तुमसे टूटा है ? सच-सच बता दो, बेटा । मैं कुछ कहूँगी नहीं ।

[पप्पू सिर हिलाकर इन्कार करता है ।]

मम्मी—(बेबी से) तूने तोड़ा है ?

बेबी—(धीमे स्वर में) हाँ ।

मम्मी—(बेबी के दोनों गालों पर तड़ातड़ तमाचे मारती हुई) ठीक से नहीं खेल सकती ? बोल और तोड़ेगी फूलदान । आने दे डैडी को । तेरी वह मरम्मत कराऊँगी कि याद रक्खेगी । (कान पकड़कर बिठाती हुई) साफ कर फर्श । अगर एक भी टुकड़ा पड़ा रह गया तो खाना नहीं मिलेगा ।

[मम्मी झल्लाकर अन्दर जाती हैं । बेबी सिसकती हुई टुकड़े बीनने लगती है ।]

पप्पू—(बेबी के पास बैठकर) तूने मेरी शिकायत क्यों नहीं की ?

बेबी—(सिसककर) मम्मी ने कहा था, भैया की शिकायत नहीं करनी चाहिए।

पप्पू—(प्रभावित होकर) तूने...मेरे पीछे मार क्यों खायी ?

बेबी—तुम...तुम मेरे भैया जो हो।

पप्पू—(उठकर सिसकता हुआ) मगर...मैं...मैं...तो तुझे दुश्मन मानता था। अब...आज से...(बात अधूरी छोड़कर ऊँचे स्वर में) मम्मी !

मम्मी—(प्रवेश करके प्रसन्न स्वर में) क्या है, मेरे लाल ?

पप्पू—(मम्मी के पैरों पर झुककर) मम्मी ! फूलदान मैंने तोड़ा है—मैंने। मुझे मारिये—खूब मारिये। आपने बेबी को क्यों मारा...मेरी बहन को क्यों मारा ?

पप्पू फूट-फूट कर रोने लगता है। मम्मी उसे 'मेरा बेटा, 'मेरा पप्पू' कहकर उठाती हैं और सीने से लगा लेती हैं। बेबी उठकर ताली बजाती है और 'मेरा भैया,' 'मेरा भैया' कहकर नाचती है। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।]

पत्थर-दिल

[मनोवैज्ञानिक एकांकी]

पात्र

मुरलीधर—मध्यमवर्ग का गृहस्थ; अवस्था ४५ वर्ष।
सरूपी —मुरलीधर की पत्नी; अवस्था ४२ वर्ष।
ज्योति —मुरलीधर की पुत्री; अवस्था २२ वर्ष।
ज्ञानचन्द —धनी व्यापारी; अवस्था ४७ वर्ष।
आलोक —ज्ञानचन्द का पुत्र; अवस्था २५ वर्ष।

स्थान

मुरलीधर के घर का एक कमरा

समय

सायंकाल

[कमरा साधारण है। सामने की खिड़की खुली हुई है। बायीं ओर का द्वार अन्दर और दाहिनी ओर का द्वार बाहर जाने के लिए है। दोनों पर नीले पर्दे पड़े हैं। खिड़की के ऊपर दीवार-घड़ी है, जिसमें चार बजकर पाँच मिनट हुए हैं। खिड़की के आस-पास दो कैलेण्डर टँगे हैं। बायें कोने में एक तख्त है जिस पर दरी-चादर बिछी है। दाहिने कोने में एक छोटी मेज पर रेडियो रक्खा है। कमरे के बीच में एक नीची-गोल मेज है जिसके आस-पास तीन कुर्सियाँ पड़ी हैं। पर्दा उठने पर मुरलीधर टहलता हुआ दिखाई पड़ता है। वह साधारण डील-डौल का गोरा व्यक्ति है। साफ धोती-कमीज पहने है। पैरों में काले जूते, आँखों पर चश्मा और सिर पर सफेद टोपी है। वह रह-रहकर घड़ी की ओर देखता है।]

मुरलीधर—(ऊँचे स्वर में) अभी तक कोट में बटन नहीं लगाये ?

सरूपी—(अन्दर से) लग गये। चिल्लाते क्यों हो ?

[मुरलीधर फिर टहलने लगता है। अन्दर से सरूपी आती है। वह गेहुँआ रंग की स्त्री है। धोती-ब्लाउज पहने है। हाथ में कोट लिये हुए है।]

सरूपी—यह लो कोट। गाड़ी कै बजे आती है ?

मुरलीधर—(कोट लेकर पहनता हुआ) सवा चार बजे।

सरूपी—तो जाओ न जल्दी। खड़े-खड़े मेरा मुँह क्या देख रहे हो ?

मुरलीधर—(कोट के बटन बन्द करता हुआ) घंटा भर तो बटन टाँकने में ही लगा दिया और अब दोष...

सरूपी—(बीच ही में) दोष तुम्हारा नहीं तो किसका है ? तीन बजे तक तो सोते ही रहे।

मुरलीधर—अब अपना लेक्चर रहने भी दो। (द्वार की ओर बढ़कर) मुँह की तरह अगर हाथ भी चले तो...

[बाहर से ज्ञानचन्द का प्रवेश। वह साँवले रंग का स्थूलकाय व्यक्ति है। चूड़ीदार पायजामा और अचकन पहने है। पैरों में पम्प शू है और हाथ में छड़ी। सिर पर काली टोपी और उँगलियों में कीमती अँगूठियाँ हैं।

ज्ञानचन्द—जो है सो, कहाँ की तैयारी है ? (सरूपी से) नमस्ते, भाभी जी !

मुरलीधर—जोती आ रही है। उसी को लेने स्टेशन जा रहा हूँ।

ज्ञानचन्द—(हँसकर कुर्सी पर बैठता हुआ) जो है सो, तुम भी अजीब आदमी हो, मुरलीधर ! अरे कोई बच्ची तो है नहीं जो रास्ता भूल जायेगी। जो है सो, बैठो भी। मुझे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।

सरूपी—आप कुछ देर बाद आ जायें तो बड़ी कृपा हो। जोती साल भर बाद आ रही है—सो भी डाक्टरी पास करके ! अगर ये स्टेशन न गये तो वह बुरा मान जायेगी।

ज्ञानचन्द—जो है सो, बच्चों को सिर पर चढ़ाना ठीक नहीं, भाभी। (मुरलीधर से) बैठ जाओ। मेरे पास ज्यादा समय नहीं है, जो है सो।

मुरलीधर—(घड़ी की ओर देख कर उदास स्वर में) अब जाना न जाना एक सा ही है। (कुर्सी पर बैठकर सरूपी से) तुम जाओ अन्दर।

[सरूपी अन्दर चली जाती है]

ज्ञानचन्द—जो है सो, मेरे आने का कारण...

मुरलीधर—(बीच ही में) मैं जानता हूँ तुम क्यों आये हो। मगर...मगर तुम्हें अभी कुछ दिन और रुकना पड़ेगा।

ज्ञानचन्द—जो है सो, आखिर कब तक रुका रहूँ। बहुत पुरानी रकम हो गयी है। समाई की भी हद होती है। जो है सो, दस साल से गम खाये बैठा हूँ। अब तो यह मकान भी बीस हजार में नहीं बिकेगा, जो है सो···।

मुरलीधर—तो क्या इस मकान को कुर्क करा कर हमें दर-दर का भिखारी बनाना चाहते हो ?

ज्ञानचन्द—जो है सो, मजबूरी है। मैं एक हफ्ते से ज्यादा नहीं रुक सकता।

मुरलीधर—(क्रुद्ध स्वर में) देखो ज्ञानचन्द, तुमने व्यापार में मुझे धोखा दिया, मैं चुप रहा; साझे की रकम घोंट कर मुझे बरबाद कर दिया, मैंने कुछ न कहा, लेकिन अब अगर तुमने इस मकान को हड़पने की कोशिश की तो अच्छा न होगा। समझे ?

ज्ञानचन्द—जो है सो, मैं रकम माँगने आया हूँ, गालियाँ सुनने नहीं। कान खोल कर सुन लो। जो है सो, अगर हफ्ते भर में रकम नहीं चुकाई तो कानूनी कार्रवाई करूँगा। फिर दोष न देना, जो है सो।

मुरलीधर—भगवान से डरो, ज्ञानचन्द ! वह सब कुछ देखता है। मेरा सर्व-

नाश करके, मेरी लाखों की सम्पदा हड़प कर तुम्हें सन्तोष नहीं मिला ? अब नौकरी करके पेट पालता हूँ। तुम यह भी नहीं देख सकते ? तुम चाहते हो कि सिर छिपाने के लिए जगह भी न रहे।

ज्ञानचन्द—जो है सो, मगर मेरी रकम...

मुरलीधर—(बीच में ही) ठीक है। अगर तुम इसी पर तुले हो तो यह भी कर लो। (आवेश में) सड़कों पर पड़ा रहूँगा, मगर तुमसे गिड़गिड़ा कर दया की भीख नहीं मागूँगा।

ज्ञानचन्द—जो है सो, अगर हम ऐसे भीख देने लगें तो दो दिन में दिवाला निकल जाये। (रुककर) हाँ, जो है सो, मकान बचाने की एक सूरत है।

[ज्ञानचन्द गूढ़ दृष्टि से मुरलीधर की ओर देखता है। मुरलीधर मौन रहता है।]

ज्ञानचन्द—जो है सो, तुम्हारी जोती तो काफी सयानी हो गई होगी, मुरलीधर ?

मुरलीधर—(चिढ़कर) तुम चाहते हो कि छोटी ही बनी रहती।

ज्ञानचन्द—जो है सो, तुम तो बिगड़ने लगे। बुरा न मानो तो एक बात कहूँ ?

मुरलीधर—अभी कुछ और बाकी है ?

ज्ञानचन्द—(हँसकर) जो है सो, मैं तो मकान बचाने की सूरत बता रहा हूँ। (रुककर) जो है सो, अगर तुम अपनी जोती की शादी मेरे आलोक से कर दो तो...

मुरलीधर—(बिगड़कर) तुम्हारा सिर तो नहीं फिर गया है, ज्ञानचन्द ? अपनी बेटी को तुम्हारी बहू बनाऊँगा...?

ज्ञानचन्द—जो है सो, इसमें बुराई क्या है ? हमारे आलोक ने भी डाक्टरी पास की है सो, इस रिश्ते से हमारा मनमुटाव दूर हो जायेगा और...और... तुम्हें कर्ज अदा करने की भी जरूरत नहीं रहेगी।

मुरलीधर—(उठकर क्रुद्ध स्वर में) तुम मेरी बेटी को खरीदना चाहते हो ? तुम्हारा यह इरादा कभी पूरा नहीं होगा। समझे...? चाहे जोती को उम्र भर क्वाँरी रहना पड़े मगर उसकी शादी तुम्हारे बेटे से नहीं करूँगा।

ज्ञानचन्द—जो है सो, तुम्हारी मर्जी। (उठकर) वैसे तो एक से एक अच्छी सगाइयाँ आ रही हैं मेरे आलोक की, मगर मैं पैसा नहीं, अच्छा

खान्दान चाहता हूँ। (हँसकर) जो है सो, तुम्हारा खान्दान तो अच्छा है ही। एक बार फिर सोच लो।

मुरलीधर—(आगे बढ़कर) निकल जाओ यहाँ से।

ज्ञानचन्द—जो है सो, जाता हूँ। मगर...

[ज्ञानचन्द बात अधूरी छोड़कर द्वार की ओर बढ़ता है। अन्दर से सरूपी आती है।]

सरूपी—ठहरिये ज्ञानचन्द जी!

[ज्ञानचन्द रुक जाता है।]

सरूपी—(उसके पास जाकर) इनकी बात का बुरा न मानना। मैंने सब बातें सुन ली हैं। हमें यह रिश्ता मंजूर है।

मुरलीधर—(विरोध के स्वर में) तुम पागल तो नहीं हो गई हो?

सरूपी—तुम चुप रहो जी। (ज्ञानचन्द से) मगर फिर भी जोती से पूछना जरूरी है। वैसे आप बात पक्की समझें। जोती समझदार है। हमारी आज्ञा नहीं टालेगी।

ज्ञानचन्द—जो है सो, आप काफी समझदार हैं भाभी जी। अब आज्ञा दीजिये। जो है सो, थोड़ी देर में फिर आऊँगा। चाहता हूँ, आज ही सगाई पक्की कर कर दूँ। नमस्ते!

[ज्ञानचन्द का प्रस्थान।]

सरूपी—क्यों जी, घर बैठे इतना अच्छा रिश्ता आ गया और तुम उसे ठुकरा रहे थे?

मुरलीधर—मैं जोती को अंधे कुएँ में धक्का नहीं दे सकता। ज्ञानचन्द जैसे दुष्ट, नीच और धोखेबाज व्यक्ति के लड़के के साथ...

सरूपी—(बीचमें ही) बीती बातों को भूल जाना ही ठीक है। कौन बाप अपनी बेटी को उमरभर क्वाँरी रख सकता है? अच्छा घर और वर मिल रहा है। और क्या चाहिए?

मुरलीधर—(चिढ़कर) अपना सिर...। कान खोल कर सुन लो, मेरे जीते जी यह रिश्ता नहीं होगा।

[नेपथ्य से रिक्शे की घण्टी की आवाज आती है। सरूपी खिड़की से बाहर झाँकती है।]

सरूपी—(हर्ष से) जोती आ गई।

[मुरलीधर प्रप्रसन्नता से द्वार की ओर देखता है। सरूपी भी बाहर जाने के लिए द्वार की ओर बढ़ती है। तभी बाहर से ज्योति आती है। वह इकहरे बदन की गोरी और सुन्दर युवती है। साड़ी-ब्लाउज और सैन्डल पहने है। हाथ में पर्स है।]

सरूपी—(ज्योति को सीने से लगाकर) आ गयी मेरी बेटी ? कितनी दुबली हो गयी है।

ज्योति—(लाड़ से) तुम तो हमेशा यही कहती हो, माँ। (मुरलीधर से) बाबू जी, आप बताइये, मैं पहले से मोटी हूँ या दुबली ?

मुरलीधर—(हँसकर) माँ-बेटी के बीच में कौन पड़े ? (रुककर) अरे, रिक्शेवाला सामान नहीं लाया अभी तक ?

ज्योति—मैं सामान नहीं लायी हूँ, बाबू जी। वहीं नौकरी मिल गई है। दो-एक दिन में चली जाऊँगी।

[मुरलीधर के चेहरे पर पीड़ा के भाव उभरते हैं। वह चुप-चाप तख्त पर बैठ जाता है।]

सरूपी—वहाँ नौकरी क्यों कर ली, बेटी ? सोचा था, अब तू हमारे साथ रहेगी।

मुरलीधर—नौकरी करने की क्या जरूरत है ? यहीं दवाखाना क्यों नहीं खोल लेती ?

ज्योति—(पिता के पास बैठकर) नौकरी से दो लाभ होंगे, बाबू जी। अनुभव भी प्राप्त होगा और धन भी। जब दवाखाना खोलने लायक पैसे जमा कर लूँगी तब नौकरी छोड़ दूँगी।

मुरलीधर—(निःश्वास छोड़कर) यह भी समय की बात है, बेटी, जो तुझे दवाखाना खोलने के लिए नौकरी करनी पड़ रही है।

सरूपी—तुम फिर अपना पचड़ा लेकर बैठ गये। दिन एक से नहीं रहते। हमारी बेटी अब राजरानी बनेगी।

[ज्योति चौंककर सरूपी की ओर देखती है]

मुरलीधर—तुम भी तो अपनी गाथा लेकर बैठ गयी। (ज्योति से) जा बेटी, हाथ-मुँह धोकर नाश्ता कर लो।

ज्योति—रास्ते में चाय ले ली थी। अब भूख नहीं है, बाबू जी।

सरूपी—मेरे साथ अन्दर चल, बेटी। मुझे तुझसे जरूरी बात करनी है।

मुरलीधर—अन्दर ले जाने की क्या जरूरत है। जो बात करनी है, मेरे सामने करो।

सरूपी—क्या कहते हो ? कुछ लाज-हया...

मुरलीधर—(बीच में) मैं तुम्हारी चाल समझता हूँ। तुम उसे अकेले में ले जाकर फुसलाना चाहती हो। मगर...मगर मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। समझीं...?

सरूपी—मगर...

मुरलीधर—अगर-मगर कुछ नहीं। (ज्योति से) बेटी, तू अब सयानी हो गई है; अपना भला-बुरा समझती है। शर्म-संकोच की जरूरत नहीं। माँ जो कुछ पूछें, उसका साफ-साफ जवाब दे दे।

[मुरलीधर उठकर टहलने लगता है। ज्योति की समझ में कुछ नहीं आया है। वह वह कभी माँ की ओर देखती है कभी पिता की ओर।]

सरूपी--(ज्योति के पास बैठकर) बेटी, तू यह जानती है कि माँ-बाप की सबसे बड़ी चिन्ता यही होती है कि जल्द से जल्द बेटी के हाथ पीले कर दें...

ज्योति—(न समझने के ढंग से) जी...

सरूपी--(सिर पर हाथ फेरकर प्यार से) हमने तेरा रिश्ता एक अच्छे लड़के से तय कर दिया है, बेटी।

[ज्योति का चेहरा उतर जाता है। आँखों में अश्रु की बूँदें झलकने लगती हैं]

ज्योति—(धीमे स्वर में) माँ...

सरूपी—लड़के ने डाक्टरी पास की है। बाप लाखों का मालिक है। तू राज-रानी बन कर रहेगी, मेरी बेटी।

ज्योति—(पीड़ित स्वर में) यह क्या किया, माँ ? (आर्द्र स्वर में) मुझसे तो पूछ लेतीं।

सरूपी—इसमें दुखी होने की क्या बात है, पगली ? तुझे तो खुश होना चाहिये कि इतना अच्छा घर और वर...

ज्योति—(बीच में ही सिसककर) मैं यह शादी नहीं कर सकती, माँ, मैं यह शादी नहीं कर सकती।

मुरलीधर—(प्रसन्न होकर) तूने मेरी छाती का बोझ हल्का कर दिया, बेटी। (सरूपी से) सुन लिया जोती का फैसला ?

सरूपी—बीच में दखल न दो। (ज्योति से मीठे स्वर में) अगर तू अभी शादी करना नहीं चाहती है तो साल-दो-साल बाद हो सकती है। सगाई तो तय...

ज्योति—ओह, तुम नहीं समझतीं माँ, कुछ नहीं समझतीं। मैं...मैंने...

सरूपी—(अपेक्षाकृत कड़े स्वर में) मैं...मैं क्या ? साफ-साफ क्यों नहीं कहती, क्या बात है ?

मुरलीधर—डाँट क्यों रही हो बिचारी को ? (ज्योति से) साफ-साफ बता दे बेटी।

ज्योति—(टूटे स्वर में) मैं...मैंने...(बाहों में मुँह छिपाकर) ओह कैसे बताऊँ, माँ ?

सरूपी—तू...तू...किसी और से शादी...?

[ज्योति सिर हिलाती है।]

मुरलीधर—(हँसकर) पगली, इसमें शर्माने की क्या बात है ? तू फिक्र न कर। जिसे तूने पसन्द किया है उसी से तेरा ब्याह करूँगा—धूमधाम के साथ।

सरूपी—(असन्तोष से) इस छोकरी के साथ-साथ तुम्हारा भी सिर फिर गया है। बिना समझे-बूझे कह दिया धूमधाम से ब्याह रचाऊँगा। हुँ...। (ज्योति) से लड़का क्या करता है, कहाँ रहता है, घर कैसा है...?

ज्योति—(धीमे स्वर में दृष्टि नीची करके) हम दोनों ने साथ-साथ डाक्टरी पास की है। अभी आते होंगे, तब...तब...देख लेना।

[ज्योति उठकर अन्दर चली जाती है। सरूपी निराश होकर मुरलीधर की ओर देखती है।]

मुरलीधर—हुँ...मेरी बेटी को खाई में ढकेलना चाहती थीं। सुन लिया उसका उत्तर। कह देना ज्ञानचंद के बच्चे से...

[ज्ञानचन्द का हँसते हुए प्रवेश]

ज्ञानचन्द—जो है सो, ज्ञानचन्द का बच्चा हाजिर है, भाभी जी। जोती से बात की ?

सरूपी—(उठकर हमने उससे बात की थी। उसे यह रिश्ता मंजूर नहीं है।

ज्ञानचन्द—(कुरसी पर बैठ कर) जो है सो, बच्चों की मर्जी-नामर्जी क्या ?

सरूपी—हम जोती की मर्जी के खिलाफ कुछ नहीं कर सकते। वह किसी और से शादी करना चाहती है।

ज्ञानचन्द—(हँसकर) जो है सो, जवानी अंधी होती है; उसे राह दिखाना हम बुजुर्गों का काम है। (रुककर) जो है सो, हमारे आलोक ने भी अपनी माँ को लिखा है कि मैंने अपने लिए लड़की पसन्द कर ली है। नयी तालीम ने दिमाग खराब कर दिया है इन लोगों का। जो है सो, मेरा कहना मानिये। शादी कर दीजिये। फिर अपने-आप ठीक हो जायेगा।

मुरलीधर—तुम्हारी तरह पत्थर का दिल हमारे पास नहीं है, ज्ञानचन्द। तुमने हमारा जवाब सुन लिया। अब जा सकते हो।

ज्ञानचन्द—(उठकर) जो है सो, मैं तो तुम्हारी ही भलाई के लिये कह रहा था। (द्वार की ओर बढ़कर) हफ्ते भर में भुगतान हो जाना चाहिये, जो है सो...

[बाहर से आलोक का प्रवेश। वह स्वस्थ और गोरा युवक है। पैण्ट-बुशशर्ट पहने है। पैरों में लोफर-शू है।]

ज्ञानचन्द—(आश्चर्य से) जो है सो, तू लखनऊ से कब आया, आलोक?

आलोक—इसी गाड़ी से आया हूँ, पिता जी। आप घर पर थे नहीं··

ज्ञानचन्द—जो है सो, मुझे घर पर रहने की फ़ुर्सत कहाँ? (मुरलीधर से) जो है सो, एक हफ्ते बाद फिर आऊँगा। अब जाता हूँ...।

मुरलीधर—साथ में अपने साहबजादे को भी लेते जाओ।

आलोक—मगर...मगर...मैं तो जोती से मिलने आया हूँ।

मुरलीधर—(गरजकर) तुम उससे नहीं मिल सकते।

आलोक—(आगे बढ़कर) मेरी बात तो सुनिये।

मुरलीधर—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। निकल जाओ यहाँ से। मुझे तुम दोनों की छाया से भी घृणा है।

[अन्दर से ज्योति आती है। आलोक को देखकर प्रसन्न हो जाती है।]

ज्योति—आप इन्हें क्यों डाँट रहे हैं, बाबू जी? इन्हें मैंने बुलाया है।

मुरलीधर—तूने बुलाया है? क्यों?

ज्योति—आपसे आशीर्वाद लेने के लिए। (सरूपी से) माँ, यही हैं वह जिनके साथ मैंने शादी...

सरूपी—(प्रसन्नता से) अरे, इसी से तो मैंने भी सगाई पक्की की थी। (ज्ञानचन्द से) अब तो आपकी मनोकामना पूरी हुई?

ज्ञानचन्द—जो है सो, यह भी अच्छी पहेली रही। (आलोक से) क्यों रे, तूने पहले से क्यों नहीं बताया कि तू जोती से व्याह करना चाहता है। जो है सो...

आलोक—आपने बताने का मौका ही नहीं दिया, पिता जी।

ज्योति—(आलोक का हाथ पकड़कर मुरलीधर से) बाबू जी, आशीर्वाद दीजिये कि हम दोनों का जीवन सुखमय हो।

मुरलीधर—(क्रोध से काँप कर) मेरी आत्मा आशीर्वाद नहीं, शाप दे रही है। तूने मेरे मुँह पर कालिख पोत दी, अभागिन! दुनिया में यही लड़का मिला तुझे? अगर तू एक भिखारी को पसन्द करती तो भी तेरा हाथ हँसते-हँसते उसके हाथ में दे देता, मगर...मगर इसके हाथ में तेरा हाथ नहीं दे सकता ...कभी नहीं दे सकता।

ज्योति—(भीगे स्वर में) बाबू जी...

मुरलीधर—(आवेश में) आलोक उस बाप का बेटा है जिसने मुझे मिटा दिया (आर्द्र कंठ से) कहीं का न रक्खा। बाप की कमी बेटा पूरी करना चाहता है—मेरी एकमात्र बेटी मुझसे छीनना चाहता है।

ज्ञानचन्द—जो है सो, मैं अपने कर्मों पर लज्जित हूँ, मुरलीधर। मुझे गालियाँ दो, जी-भरकर गालियाँ दो, मगर...जो है सो,...इन लोगों की जिन्दगी खराब न करो।

ज्योति—बाबू जी, मेरे सुख का गला न घोंटिये। (सिसककर) आपने कहा था, जिसे तूने पसन्द किया है उसके साथ तेरा व्याह रचाऊँगा।

मुरलीधर—(कठोर स्वर में) मुझे क्या पता था कि तू मेरे दुश्मन के बेटे...

आलोक—(बीच में ही) आपकी दुश्मनी पिता जी से है। मैंने आपका क्या बिगाड़ा है?

मुरलीधर—साँप का बच्चा साँप ही होता है।

[ज्योति माँ की छाती में मुँह छिपाकर सिसकने लगती है। सरूपी उसके सिर पर हाथ फेरती है।]

ज्ञानचन्द—जो है सो, पिछली भूलों को सुधारने का मौका दो। मुझे माफ कर दो, भाई।

मुरलीधर—मेरी आत्मा तुम्हें कभी माफ नहीं कर सकती।

सरूपी—(मुरलीधर के निकट जाकर) तुम्हारी अकल को क्या हो गया है? तुम समझते हो, बेटी का सुख छीन कर तुम्हारी आत्मा को शान्ति मिलेगी?

मुरलीधर—(डाँटकर) तुम मेरे बीच में मत बोलो।

आलोक—(आगे बढ़कर ज्योति का हाथ पकड़ कर निश्चय की दृढ़ता से) मैं तुम्हारे लिए पिता जी को छोड़ सकता हूँ, जोती। तुम भी साहस से काम लो।

मुरलीधर—(ज्योति से) अगर तू आलोक को पाना चाहती है तो तुझे मुझको छोड़ना पड़ेगा।

आलोक—(आग्रह के स्वर में) चलो, जोती, हम अपना नया संसार बसायेंगे।

मुरलीधर—अगर तू इसके साथ गयी तो इस घर के द्वार तेरे लिए सदा बन्द रहेंगे।

आलोक—जोती, प्यार के लिए हमें यह त्याग करना ही पड़ेगा। चलो, इन पत्थर-दिलों की दुनिया से दूर चलें।

मुरलीधर—(आवेश से) जा, अगर तुझे जाना है तो चली जा। समझ लूँगा, हमारी जोती मर गई...।

आलोक—(प्यारभरे स्वर में) चलो, जोती!

ज्योति—(हाथ छुड़ाकर भीगे स्वर में) नहीं, आलोक! मैं...मैं बाबू जी को छोड़ कर नहीं जा सकती—कभी नहीं जा सकती।

आलोक—(आर्द्र कंठ से) जोती...

ज्योति—समझ लेना जोती मर गई...हमेशा-हमेशा के लिए मर गई।

आलोक—(आवेश में) समझ गया। तुम्हारे सीने में भी अपने बाप की तरह दिल नहीं, पत्थर है—पत्थर!

[ज्योति सिसकती हुई तेजी से अन्दर जाती है। सरूपी क्रुद्ध दृष्टि से मुरलीधर की ओर देखती है फिर धीमी गति से अन्दर जाती है।]

ज्ञानचन्द—(भारी स्वर में) जो है सो, नहीं जानता था कि मेरे पापों का फल इन बच्चों को मिलेगा। (जेब से कागज निकालकर फाड़ता हुआ) यह दस्तावेज़ था, मुरलीधर! मुझे तुमसे पाई-पाई मिल गई, जो है सो। (आलोक का हाथ पकड़कर टूटे स्वर में) चल, बेटा!

[आलोक और ज्ञानचन्द मन्द गति से द्वार की ओर बढ़ते हैं। मुरलीधर के चेहरे पर भाँति-भाँति के भाव आ-जा रहे हैं। नेपथ्य से ज्योति की सिसकियों की ध्वनि आती है।]

मुरलीधर--(सहसा जोर से) ठहरो, आलोक !

[ज्ञानचन्द और आलोक रुक जाते हैं।]

मुरलीधर—(आलोक के निकट जाकर) अन्दर से जोती को ले आओ।

आलोक--(विस्मय से उसकी ओर देखकर) जी...

मुरलीधर--जाओ जल्दी। आशीर्वाद देने का शुभ मुहूर्त निकला जा रहा है।

[आलोक प्रसन्नता से अन्दर जाता है।]

ज्ञानचन्द--(टोपी उतार कर मुरलीधर के पैरों पर रखने का उपक्रम करता हुआ) जो है सो, मैं फिर माफी माँगता हूँ, भाई !

[मुरलीधर भावावेश से ज्ञानचन्द को छाती से लगाता है। दोनों की आँखों से अश्रु-धार बहने लगती है।]

(यवनिका-पतन)

इंटरव्यू

[फ़िल्मी ज़िन्दगी के दीवाने नवयुवकों पर व्यंग्य]

पात्र

हीरालाल—उच्च वर्ग का व्यक्ति; अवस्था ४५ वर्ष।
चन्दू —हीरालाल का पुत्र; अवस्था २२ वर्ष।
दीनदयाल—हीरालाल के ही स्तर का व्यक्ति; अवस्था ४२ वर्ष।
माला —दीनदयाल की पुत्री; अवस्था १९ वर्ष।

स्थान

हीरालाल का गोल कमरा

समय

सन्ध्याकाल

[कमरा आधुनिक ढंग से सजा है। दीवारें हल्के नीले रंग से पुती हैं। दीवारों पर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र टँगे हैं। कमरे के बीच में एक नीची गोल मेज है जिस पर एक फूलदान रक्खा है। मेज के तीन ओर तीन कुर्सियाँ हैं। कमरे में दो द्वार हैं। सामने वाला द्वार अन्दर के बरामदे में खुलता है और बायीं ओर का द्वार बाहर जाने के लिए है। दोनों पर सुन्दर पर्दे पड़े हैं।

पर्दा उठने के बाद क्षणभर स्टेज खाली रहता है। फिर चन्दू 'डैडी', 'डैडी' कहता हुआ बाहर से आता है। वह ढीली और ऊँची मोहरी की पैन्ट पर अभिनेत्रियोंके चित्रों वाली बुशशर्ट पहने है। बालों की एक लट माथे पर झूल रही है।]

चन्दू—(कमरे में हीरालाल को न पाकर ऊँचे स्वर में) डै...डी !

[सामनेवाले द्वार का पर्दा हटाकर हीरालाल का प्रवेश। भरे हुए चेहरे पर रोबदार मूँछें, स्वस्थ शरीरपर धोती-कुर्ता, आँखों पर चश्मा।]

हीरालाल—शोर क्यों मचाता है ! (दर्शकों की ओर मुँह करके बैठ जाता है) क्या मैं बहरा हूँ ?

चन्दू—यानी कि किस गधे ने आपको बहरा कहा ! मैं तो इण्टरव्यू...

हीरालाल—(बीच में ही) हो गया इण्टरव्यू ! क्या उम्मीद है ?

चन्दू—यानी कि सेन्ट परसेन्ट होप है, डैडी ! चार सवालों के जवाब आपके चन्दू ने ऐसे फटाफट दिये कि वे लोग देखते रह गये। यानी कि मगर पाँचवें सवाल का जवाब...

हीरालाल—गलत दे आया, यही न ?

चन्दू—यानी कि यही तो जानना चाहता हूँ।

हीरालाल—क्या सवाल था ?

चन्दू—(बैठकर) यानी कि यू० पी० का चीफ मिनिस्टर कौन है ?

हीरालाल—तूने क्या जवाब दिया ?

चन्दू—यानी कि पहले आप बताइये।

हीरालाल—डा० सम्पूर्णानन्द।

चन्दू—धत्तेरे की। यानी कि फिर भी फिफ्टी परसेन्ट नम्बर तो अपन को मिल ही जायेंगे।

हीरालाल—तूने किसका नाम लिया ?

चन्दू—यानी कि 'नन्द' तो अपन को याद था मगर पहला हिस्सा (माथेपर उँगली रखकर) यहाँ से गोल था।

हीरालाल—क्या तूने अपूर्णानन्द कह दिया ?

चन्दू—यानी कि क्या मैं गधा हूँ ? मैंने कहा—देवानन्द।

हीरालाल—(विस्मय से) क्या ?

चन्दू—यानी कि जी हाँ ! गजब का हीरो है देवानन्द।

हीरालाल—(क्रोध से) तेरे दिमाग में हर वक्त ऐक्टर ही घूमा करते हैं। लाख बार कहा कि अखबार पढ़ा कर, अच्छी-अच्छी किताबें पढ़ा कर, मगर तुझे स्क्रीन, फिल्म-फेयर और फिल्म-इण्डिया से ही फुर्सत नहीं मिलती।

चन्दू—यानी कि इसमें बिगड़ने की क्या बात है ? शायद आप को मालूम नहीं कि बड़े-बड़े डाक्टर, वकील, प्रोफेसर यानी कि नेता तक ये मैगजीन्स पढ़ते हैं।

हीरालाल—तेरा सिर पढ़ते हैं।

चन्दू—यानी कि आप भी कैसी बातें करते हैं, डैडी। भला सिर भी कोई पढ़ने की चीज है ?

हीरालाल—दिन-रात तुझ पर फिल्मों का भूत-सवार रहता है। और तो और खुद फिल्मों का चलता-फिरता इश्तहार बना-घूमता है।

चन्दू—अहा हा ! यानी कि क्या बात कही है, डैडी ! फिल्मों का चलता-फिरता इश्तहार यानी कि ग्रैण्ड आइडिया। वण्डरफुल !

हीरालाल—आइडिया का पता तब चले जब कमा कर खाना पड़े। बाप की कमाई पर...

चन्दू—(बीच में ही) यानी कि आप समझते हैं मैं कमा नहीं सकता ? देखिये, आप का यह ख्याल गलत है—यानी कि सेन्ट परसेन्ट गलत है। जिस दिन चाहूँ मैं बम्बई जाकर हीरो बन सकता हूँ। यानी कि आप अपने चन्दू को समझते क्या हैं ?

हीरालाल—मामूली से इण्टरव्यू में तो अनाप-शनाप बकता है और सपना देखता है हीरो बनने का ! बेवकूफ कहीं का !

चन्दू—(लाड़ से) यानी कि आधा सवाल गलत हो गया तो कौन सा पहाड़

टूट पड़ा ? बाकी सवाल तो सही हैं।

हीरालाल—क्या जवाब देकर आये हैं साहबज़ादे, ज़रा मैं भी तो सुनूँ!

चन्दू—यानी कि निहायत मामूली सवाल थे, डैडी! पहला सवाल था—यानी कि तुम अशोक के बारे में क्या जानते हो ?

हीरालाल—बक आया होगा अटर-सटर। तूने कभी अशोक के बारे में पढ़ा भी है ?

चन्दू—यानी कि आप अपने चन्दू को फिर अण्डरएस्टीमेट करने लगे, डैडी! आखिर रात-दिन की पढ़ाई किस काम आती ? यानी कि खटाखट बता दिया कि अशोक कहाँ पैदा हुआ, कब और कैसे फिल्म में आया, किन-किन फिल्मों में काम किया। यानी कि 'एवरग्रीन' हीरो अशोककुमार के बारे में मुझसे ज्यादा कौन जानता है ?

हीरालाल—(माथा ठोककर) मेरा भाग्य ही खोटा है बरखुरदार, तुम्हारा कोई कसूर नहीं।

चन्दू—यानी कि खैरियत तो है, डैडी ?

हीरालाल—अरे बुद्धू, उन्होंने सम्राट् अशोक के बारे में पूछा था, तेरे अशोक-कुमार के बारे में नहीं।

चन्दू—यानी कि सम्राट् अशोक कौन बला है ?

हीरालाल—हिस्ट्री नहीं पढ़ी ?

चन्दू—यानी कि आप फिर मेरा मजाक उड़ाने लगे, डैडी। आप जानते हैं कि मुझे हिस्ट्री-विस्ट्री नहीं आती। खैर, एक और गलत भी चलेगा। बाकी तो सेन्ट परसेन्ट सही हैं।

हीरालाल—जैसे सही हैं, मैं समझ गया।

चन्दू—यानी कि आप को अपने चन्दू पर यकीन नहीं ? उनका दूसरा सवाल था पृथ्वीराज के बारे में। यानी कि मैंने उसकी फिल्मी जिन्दगी से लेकर थियेटर तक का हवाला दे दिया। यानी कि अपटुडेट इन्फर्मेशन यह भी दे दी कि उसका पिक्चर "पैसा" रिलीज हो गया है।

हीरालाल—तू पुरखों को तार कर रहेगा। पृथ्वीराज चौहान का नाम नहीं सुना ?

चन्दू—(सोचकर) यानी कि "पृथ्वीराज-संयोगिता" तो देखा था मगर पृथ्वीराज

चौहान नाम की तो कोई फिल्म नहीं बनी, डैडी। आई एम सेन्ट पर-सेन्ट श्योर !

हीरालाल—(क्रुद्ध होकर) मैं जानता हूँ—तेरे भाग्य में घास खोदना ही लिखा है।

चन्दू—यानी कि आप गलत कहते हैं डैडी। घास तो मेरे बाप-दादों ने भी नहीं खोदी। (हीरालाल को क्रुद्ध देखकर) मेरा मतलब है—यानी कि मतलब तो आप समझ ही गये होंगे।

हीरालाल—(दुखी स्वर में) माँ के लाड़-प्यार ने तेरा सिर फिरा दिया है। (निःश्वास छोड़कर) वह तो चली गयी मगर भोगना मुझे पड़ रहा है।

चन्दू—यानी कि नाराज न हों डैडी। तीसरा सवाल तो गलत हो ही नहीं सकता। उन्होंने पूछा—मोतीलाल का नाम सुना है ? मैंने सटाक से कहा—जी हाँ। यानी कि मोतीलाल जैसे टाप एक्टर को कौन नहीं जानता। आप ही बताइये डैडी, जो एक्टिंग मोतीलाल ने 'मिस्टर सम्पत' में कर दी वह भला दिलीप या राज कर सकता है ?

हीरालाल—वे चाहें न कर सकें पर तू जरूर कर सकता है।

चन्दू—यानी कि आप शर्मिंदा करते हैं डैडी। वैसे, हाँ, अगर आप इजाज़त दें तो बम्बई जाकर कुछ करतब दिखाऊँ।

हीरालाल—(डपटकर) ख़ामोश !

चन्दू—यानी कि बहुत अच्छा !

हीरालाल—चौथा सवाल भी सुना दे। देखूँ, उसमें कौन सा तीर मारा है !

चन्दू—यानी कि उन्होंने कहा—भारत ने पिछले दस सालों में जो तरक्की की है उसका बयान करो। यानी कि मैंने 'संत कबीर' से लेकर 'बैजू बावरा' और 'बसन्त-बहार' तक का कैरियर चुटकी बजाते बखान दिया। यानी कि भारतभूषण की जिन्दगी तो अपने लिए खुली किताब की तरह है।

हीरालाल—(उठकर गरजते हुए) भारतभूषण के बच्चे, निकल जा यहाँ से !

चन्दू—(उठकर सहमे स्वर में) यानी कि मुझसे कोई गुस्ताखी हो गयी ?

हीरालाल—जानता हूँ—तू एक न एक दिन मेरी नाक कटाकर ही रहेगा। (रुककर) इण्टरव्यू वाले भी सोचते होंगे कि किस गधे से पाला पड़ा है।

चन्दू—(ताली बजाकर) हियर, हियर डैडी। यानी कि आप तो ज्योतिषी मालूम

होते हैं। मगर जरा फर्क रह गया आपके कैल्कुलेशन में।

हीरालाल—क्या मतलब ?

चन्दू—यानी कि मतलब यह कि जब मैं कमरे से बाहर निकल आया तो एक मेम्बर ने दूसरे से कहा—किस गधे के बच्चे से पाला पड़ा है।

हीरालाल—(चीखकर) चन्दू !

चन्दू—यस डैडी !

हीरालाल—तेरे दिमाग में गोबर भरा है।

चन्दू—यस डैडी ! (चौंककर) यानी कि क्या फरमाया आपने ? गोबर भरा है...! जी नहीं। यू आर रॉंग, सेन्ट परसेन्ट रॉंग ! यानी कि इण्टरव्यू में मैंने गलत जवाब दिये इसमें मेरी कोई गलती नहीं। इण्टरव्यू करनेवालों में इतनी तमीज़ तो होनी ही चाहिये कि किस आदमी से कैसा सवाल पूछें। यानी कि हम नौजवानों को हिस्ट्री-भूगोल से क्या मतलब ?

हीरालाल—तो क्या तोता-मैना और अलिफ लैला की कहानियों से मतलब है ?

चन्दू—यानी कि बिल्कुल नहीं। हमसे तो यह पूछना चाहिये कि मीनाकुमारी के बाल कितने लम्बे हैं, मधुबाला कौन-सा सोप लगाती है, दिलीपकुमार कौन-सा तेल यूज़ करता है, नरगिस क्या खाती है, राजकपूर कौन-सी सिगरेट पीता है, नूतन का 'वेट' कितना है, देवानन्द की हाइट...

हीरालाल—(बीच में ही) यह फिल्मी जादू एक दिन तुझे पागल न कर दे तो मेरा नाम हीरालाल नहीं।

चन्दू—एक्सक्यूज़ मी, डैडी ! यानी कि मैं खुद नाम बदलने की राय देनेवाला था। हीरालाल तो विलेन है, किसी हीरो का नाम रखिये।

हीरालाल—(दुखी स्वर में) और क्या राय देगा तू ? हुँ...हीरालाल विलेन है। (रुककर) मैं तो तुझे बड़ा आदमी बनाने का सपना देखता था मगर लगता है तेरे भाग्य में बम्बई के फुटपाथ ही लिखे हैं। (टहलता हुआ) दोपहर को बाबू दीनदयाल आये थे। अपनी इकलौती बेटी से तेरी शादी करना चाहते हैं। मैंने भी सोचा था कि तेरी शादी करके मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। मगर अब...

चन्दू—(बीच में ही) यानी कि मैंने शादी से इन्कार कब की, डैडी ? मगर हाँ, मैं गँवार, बदसूरत, नथनी और कड़े-छड़े वाली लड़की को अपनी वाइफ

नहीं बना सकता।

हीरालाल—तू कौन-सा खूबसूरत है जो...

चन्दू—यानी कि आपको अपने चन्दू में कोई ब्यूटी नहीं दिखाई देती? (रुँआसा होकर) ट्रैजडी, सेन्ट परसेन्ट ट्रैजडी। यानी कि घर की मुर्गी दाल बराबर!

हीरालाल—बाबू दीनदयाल अपनी बेटी को लेकर फिर आते होंगे। मगर मैंने फैसला कर लिया है! तेरे साथ शादी करके उस बिचारी लड़की की जिन्दगी खराब नहीं करूँगा। (कुर्सी पर बैठकर) सुना...?

चन्दू—(बैठकर पिता के पैर दाबता हुआ) ऐसा न कीजिये डैडी! यानी कि गिव मी वन मोर चान्स। प्लीज़, आई प्रे!

हीरालाल—(चन्दू के हाथ हटाकर) अब तो फिल्म का नशा...

चन्दू—(बीच में ही) बन्द, यानी कि सेन्ट परसेन्ट बन्द।

[बाहर से कार के हार्न की ध्वनि आती है।]

हीरालाल—(उठकर) लगता है बाबू दीनदयाल आ गये। देख, कोई बेहूदगी न कर बैठना।

चन्दू—(उठकर बुशशर्ट ठीक करता हुआ) डोन्ट वरी, डैडी! यानी फिकर नाट!

[दीनदयाल का प्रवेश। चूड़ीदार पैजामा, शेरवानी, काली टोपी, हाथ में छड़ी। चेहरे पर समृद्धि के 'चिह्न!']

हीरालाल—नमस्कार, दीनदयालजी!

दीनदयाल—नमस्कार! (चन्दू की ओर संकेत करके) यही हैं आपके साहबजादे?

हीरालाल—जी हाँ! (चन्दू से) बेटा नमस्कार कर!

चन्दू—यानी कि गुड इवनिंग नहीं चलेगा सर?

दीनदयाल—(हँसकर) क्यों नहीं चलेगा? अहाहा! कितना सुशील और होनहार लड़का है। लगता है भगवान ने हमारी बेटी के लिए ही बनाया है।

चन्दू—(लजाकर) थैंक यू, सर!

हीरालाल—बेटी को नहीं लाये, दीनदयालजी?

दीनदयाल—आपकी आज्ञा कैसे टाल सकता था? बाहर कार में बैठी है।

कहिये तो बुला लाऊँ ?

हीरालाल—हाँ, हाँ। इसमें पूछने की क्या बात है ?

(दीनदयाल बाहर जाने के लिए मुड़ता है।)

चन्दू—वन मिनिट, सर ! (दीनदयाल रुक जाता है। उसके पास जाकर) यानी कि क्या आप वाकई अपनी बेटी की शादी मुझसे करना चाहते हैं ?

दीनदयाल—हाँ, बेटा ! तुम उसे अपना लो तो मेरा उद्धार हो जाये।

चन्दू—यानी कि डोण्ट वरी। मगर क्या आपसे एक सवाल पूछ सकता हूँ ?

दीनदयाल—हाँ, हाँ...कहो ! क्या पूछना चाहते हो ?

चन्दू—यानी कि देखिये साहब, मेरा स्टैण्डर्ड जरा ऊँचा है ! क्या आपकी लड़की ब्यूटीफुल—आई मीन प्रेटी,—एडवान्स्ड, कल्चर्ड और आर्टिस्टिक टेस्ट की है ?

दीनदयाल—हाथ कंगन को आरसी क्या ? खुद ही देख लो, बेटा !

चन्दू—(खुश होकर) यानी कि ओ० के०। आप उसे अन्दर भेज दीजिये। मैं उसका इण्टरव्यू लूँगा।

हीरालाल }
दीनदयाल }—(एक साथ) इण्टरव्यू ?

चन्दू—हाँ, डैडी। यानी कि मैं दुनिया को दिखा दूँगा कि इण्टरव्यू कैसे लिया जाता है। आप लोग उसे अन्दर भेजने की तकलीफ करें। यानी कि इफ यू डोण्ट माइण्ड प्लीज।

[हीरालाल और दीनदयाल बाहर जाते हैं। चन्दू पैण्ट की क्रीज़ ठीक करता है। जेब से कंघा निकाल कर बाल सँवारता है। कंघा जेब में रखकर अकड़ी मुद्रा में कुर्सी पर बैठ जाता है। बाहर से माला आती है। वह सुन्दर युवती है। साड़ी-ब्लाउज और चप्पल पहने है। कलाई में घड़ी है। और कोई आभूषण नहीं। माला को देखकर चन्दू खड़ा हो जाता है।]

चन्दू—(आगे बढ़कर) गुड इवनिंग, मिस ! यानी कि तशरीफ रखिये।

[माला चुपचाप बैठ जाती है। चन्दू उसका रूप देखकर प्रसन्न है।]

चन्दू—(बैठकर) यानी कि वण्डरफुल !

माला—(सिर उठाकर) जी...

चन्दू—ब्यूटीफुल ! लवली !! यानी कि आपका नाम...?

माला—माला।

चन्दू—यानी कि ह्विच माला—वैजन्तीमाला या माला सिन्हा ?

माला—मैं सिर्फ माला हूँ।

चन्दू—वेरीगुड ! यानी कि सिर्फ माला भी चलेगा। (आगे झुककर) पढ़ाई...?

माला—(संकोच त्यागकर) इसी साल बी० ए० पास किया है।

चन्दू—लवली ! यानी कि बी० ए० पास भी चलेगा। हाँ, गाना...?

माला—घर पर अक्सर मीरा के भजन और सूर के पद गाती हूँ।

चन्दू—यानी कि यह भी कोई गाना है। आपको फिल्मी गीत गाने चाहिए—यानी कि लाइक दिस—(भोंडी आवाज में गाता है)—"जिया बेकरार है, छाई बहार है, आजा मोरे बालमा तेरा इन्तजार है"। खैर फिल्मी गीत मैं सिखा दूँगा। यानी कि डोण्ट वरी। हाँ, बजाना...?

माला—सितार, हारमोनियम और तबला जानती हूँ।

चन्दू—यानी कि यह भी कोई इन्स्ट्रूमेण्ट हैं ? असली साज तो यह है। (पैन्ट की जेब से 'माउथ आर्गन' निकालकर बेसुरे ढंग से बजाता है। माला मुस्कराती है। बाजा जेब में रखकर) यानी कि पसन्द आया ? खैर, ऐसे भी चलेगा। हाँ, ह्वाट अबाउट डान्स ?

माला—भरतनाट्यम्, कथकली और मनिपुरी नृत्य जानती हूँ।

चन्दू—यानी कि ट्रैजडी, सेन्ट परसेन्ट ट्रैजडी। बीसवीं सदी की लड़की होकर आप दसवीं सदी की बात करती हैं। (उठकर) आज का डान्स है—रम्बा सम्बा !

[चन्दू सीटी बजाकर रम्बा-सम्बा शुरू करता है परन्तु गिर जाता है। माला खिल-खिलाकर हँस पड़ती है।]

चन्दू—(उठकर पैन्ट झाड़ता हुआ) यानी कि यहाँ का फर्श का ऊँचा-नीचा है।

[चन्दू बैठ जाता है।]

माला—(मुस्कराकर) यह कहिये कि आँगन टेढ़ा है।

चन्दू—(व्यंग्य न समझ कर) यानी कि क्या बात कही है आपने ? वण्डरफुल !

हाँ, (उँगली गिनता हुआ) पढ़ाई एक, गाना दो, बजाना तीन, डान्स चार। अच्छा, आपको राइडिंग और स्वीमिंग आता है ?

माला—जी नहीं !

चन्दू—यानी कि कोई बात नहीं—कोई बात नहीं। ऐसे भी चलेगा। मैं आपको दस में आठ नम्बर देता हूँ। यानी कि आप पास हो गयीं। इण्टरव्यू खत्म हुआ। मैं आपके डैडी को बुला कर कह देता हूँ कि मुझे रिश्ता मंजूर है—यानी कि सेन्ट परसेन्ट मंजूर है।

माला—थैंक यू ! हाँ, अब अगर इजाजत हो तो मैं भी आपका इण्टरव्यू ले लूँ ? चन्द सवाल पूछने हैं, बस...।

चन्दू—(चौंककर) जी...! यानी कि मेरा इण्टरव्यू। खैर, पूछिये, शौक से पूछिये।

माला—आपका नाम ?

चन्दू—यानी कि अभी तक तो चन्दू था। मगर अब सोचता हूँ कि बदल कर दिलीप या राज रख लूँ। यानी कि चन्दू नाम कुछ जँचता नहीं। क्या ख्याल है आपका ?

माला—जो आपका है। मगर मेरी राय में दिलीप या राज के बजाय आप...

चन्दू—(बीच में ही) यानी कि कोई और नाम आपकी निगाह में है ? (माला सिर हिलाती है) बताइये, यानी कि ऐटवन्स बताइये।

माला—जानीवाकर। एक दम फिट बैठेगा आप पर।

चन्दू—जानीवाकर...? (रूखी हँसी हँसकर) ठीक है ! ठीक है !! यानी कि जानीवाकर भी चलेगा।

माला—नाम तो हो गया। अब यह बताइये कि आप पढ़े कहाँ तक हैं ?

चन्दू—यानी कि इसी साल बी. ए. (धीमे स्वर में) फेल हुआ हूँ।

माला—कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। बी. ए. फेल भी चलेगा। हाँ, आपका गाना, बजाना और नाचना तो देख ही लिया। अब यह बताइये कि खाना बनाना आता है ?

चन्दू—जी...!

माला—नहीं जानते ! खैर, ऐसे भी चलेगा। हाँ, कपड़े सिलना, धोना, उन पर लोहा करना तो जरूर जानते होंगे ?

चन्दू—(खिसियानी हँसी हँसकर) यानी कि आप वाकई बहुत मजाकपसन्द हैं।

माला—यह मजाक नहीं है। आई एम सीरियस, सेन्ट परसेन्ट सीरियस।

चन्दू—माई गुडनेस। यानी कि मर्द को इन घरेलू कामों से क्या मतलब?

माला—इतना भी नहीं जानते! अरे, जब औरत नाचने-गाने में लगी रहेगी, स्वीमिंग और राइडिंग का आनन्द लेगी तब घर का काम मर्द नहीं करेगा तो कौन करेगा? (सोचने की मुद्रा में) हूँ...! ऐसे नहीं चलेगा। मैं आपको दस में दो नम्बर देती हूँ। आप फेल हो गये। इण्टरव्यू खत्म हुआ। मैं आपके डैडी को बुलाकर कहे देती हूँ कि मुझे यह रिश्ता नामंजूर है—सेन्ट परसेन्ट नामंजूर है।

चन्दू—(रुँआसा होकर) यानी कि ऐसा जुल्म न कीजिये। सालों के बाद आज सपना पूरा हुआ है। यानी कि आज मधुबाला का रंग, मीनाकुमारी का ढंग, वैजन्तीमाला की मटक और श्यामा की झटक एक साथ देख रहा हूँ। यानी कि मुझे निराश न कीजिये मिस। (सीने पर हाथ रखकर) आई शैल डाई, सेन्ट परसेन्ट डाई (हाथ जोड़कर) आई अपील फार मर्सी, यानी कि सेन्ट परसेन्ट मर्सी।

माला—(उठकर) मजबूरी है, मिस्टर, सेन्ट परसेन्ट मजबूरी है। मेरा सपना अभी तक अधूरा है।

चन्दू—(उठकर) आपका सपना...यानी कि...योर ड्रीम...?

माला—क्या सिर्फ मर्द ही सपना देख सकते हैं? (भावुकता से) मैं भी दिलीपकुमार की गंभीरता, राजकपूर की शोखी, भारतभूषण का भोलापन और देवानन्द की मस्ती एक साथ देखना चाहती हूँ। समझे...? (ऊँचे स्वर में) डैडी?

चन्दू—(ऊँचे स्वर में) डैडी!

[हीरालाल और दीनदयाल प्रसन्न मुद्रा में अन्दर आते हैं]

चन्दू—(आगे बढ़कर दीनदयाल से) यानी कि मुझे आपकी लड़की सेन्ट परसेन्ट पसन्द है।

माला—(हीरालाल से) मुझे आपका लड़का सेन्ट परसेन्ट नापसन्द है।

चन्दू—यानी कि मुझे आपका जमाई बनना मंजूर है—सेन्ट परसेन्ट मंजूर है।

माला—मुझे आपकी बहू बनना नामंजूर है।—सेन्ट परसेन्ट नामंजूर है।

चन्दू—(हीरालाल से) डैडी, माला मेरे इण्टरव्यू में पास हो गयी।

माला—(दीनदयाल से) डैडी, चन्दू मेरे इण्टरव्यू में फेल हो गया। (हाथ पकड़-कर घसीटती हुई) चलिये।

[दीनदयाल और माला का प्रस्थान]

हीरालाल—(कड़े स्वर में) और लेगा इण्टरव्यू ?

चन्दू—(रोनी सूरत बनाकर) यानी कि उसने मुझे फेल कर दिया इसमें मेरा क्या कसूर ?

हीरालाल—कसूर तो मेरा है जो तुझ जैसे नालायक को जन्म दिया।

[हीरालाल सामने वाले द्वार की ओर बढ़ता है]

चन्दू—(हीरालाल के पीछे चलता हुआ) यानी कि हम दोनों का कोई कसूर नहीं। असली कसूर इण्टरव्यू का है। यानी कि अब यह लफ्ज हमारी डिक्शनरी में नहीं चलेगा—सेन्ट परसेन्ट नहीं चलेगा।

[यवनिका]

कानून की दीवार

[व्यंग्य एकांकी]

पात्र

श्रीमती वर्मा श्रीमती हुक्कू कुमारी कपूर	आनरेरी मजिस्ट्रेट; अवस्था क्रमशः ३५, ३० तथा २६ वर्ष ।
महेश	—क्लर्क; अवस्था २५ वर्ष ।
शान्ता	—महेश की पत्नी; अवस्था २१ वर्ष ।
गुप्ताजी	—महेश के वकील; अवस्था ३५ वर्ष ।
कुमारी माथुर	—शान्ता की वकील; अवस्था २४ वर्ष ।

पेशकार, चपरासी आदि

स्थान

लेडीज-बेंचके न्यायालय का कक्ष

समय

दोपहर

[पर्दा उठने पर मंच पर न्यायालय का वैसा ही कक्ष दिखाई देता है जैसा साधारणतया होता है। सामने की दीवार पर गांधी जी का चित्र लगा है; चित्र के नीचे दीवार-घड़ी लगी है जिसमें बारह बजे हैं। एक बड़ी मेज के आस-पास तीन कुर्सियाँ हैं। दो पर श्रीमती हुक्कू तथा कुमारी कपूर बैठी हैं। तीसरी कुर्सी खाली है। श्रीमती हुक्कू मेज पर कोहनी टेके और आँखें बन्द किये कुछ सोच रही हैं। कुमारी कपूर एक मिसिल पढ़ने में व्यस्त हैं; कटहरे के अन्दर ही एक ओर पेशकार बैठा है। बाहर कटहरे का सहारा लेकर वर्दीधारी चपरासी खड़ा हैं। बायीं ओर एक द्वार है जो बाहर के बरामदे में खुलता है। बाहर से कुछ मिली-जुली आवाजें आ रही हैं।]

कुमारी कपूर—(मिसिल बन्द करके) बारह बज गये। श्रीमती वर्मा अभी तक नहीं आयीं।

श्रीमती हुक्कू—(आँखें खोलकर) आती ही होंगी। शायद आज भी वर्मा साहब को दफ्तर छोड़ने चली गई हों। (हँसकर)भला यह कैसे हो सकता है कि पतिदेव दफ्तर रिक्शे या बस से जायें और श्रीमतीजी कार से कचहरी आयें!

कुमारी कपूर—श्रीमती वर्मा बहुत दब्बू स्वभाव की हैं। (रुककर) अच्छा हुआ जो मैं शादी की झंझट में नहीं फँसी। पति की गुलामी तो नहीं करनी पड़ती है।

श्रीमती हुक्कू—शादी के बाद हर औरत गुलाम नहीं हो जाती। मुझे देखो! मिस्टर हुक्कू की मजाल नहीं कि मेरे सामने मुँह खोल सकें।

[दोनों हँसती हैं। तभी बाहर से कार के हार्न की ध्वनि आती है। चपरासी अदब से खड़ा हो जाता है। श्रीमती वर्मा का प्रवेश। पेशकार कुर्सी छोड़कर खड़ा हो जाता है; उनके बैठ जाने पर फिर बैठ जाता है।]

श्रीमती वर्मा—क्षमा करना, जरा देर हो गई। घर-गृहस्थी की झंझट...। (पेशकार की ओर मुड़कर) पेशी शुरू हो।

पेशकार—बहुत अच्छा हुजूर! (चपरासी से) शांतादेवी बनाम महेशचन्द्र!

[चपरासी बाहर जाकर—"शांतादेवी बनाम महेशचन्द्र हाजिर हैं" पुकारता है। महेश, शांता, गुप्ताजी तथा कुमारी माथुर का प्रवेश। कटहरे में एक छोर पर महेश और गुप्ताजी खड़े हो जाते हैं और दूसरे पर शांता तथा कुमारी माथुर। गुप्ताजी तथा कुमारी माथुर के हाथों में एक-एक मिसिल है।]

श्रीमती वर्मा—मिस्टर महेशचन्द्र के वकील आप हैं, गुप्ताजी ?

गुप्ता जी—यस, योर आनर !

श्रीमती हुक्कू—(कुमारी माथुर से) आप शान्तादेवी की वकील हैं ?

कुमारी माथुर—जी हाँ !

कुमारी कपूर—(कुमारी माथुर से) शांतादेवी के बयान कराइये ।

कुमारी माथुर—(शांता से) पहले शपथ लीजिये । कहिये— मैं परमात्मा को सर्वव्यापी जानकर कहती हूँ कि जो कुछ कहूँगी सच कहूँगी; सच के अलावा और कुछ नहीं कहूँगी । भगवान् मेरी मदद करे ।

[शांता शपथ लेती है ।]

कुमारी माथुर—आपका नाम शांतादेवी है न ?

शांता—जी हाँ ।

कुमारी माथुर—महेशचन्द्र आपके कौन हैं ?

शांता—पति ।

कुमारी माथुर—पन्द्रह जुलाई की शाम को जब महेशचन्द्र दफ्तर से आये तो उन्होंने आपका अपमान किया ? आपको भला-बुरा कहा ?

शांता—जी हाँ ।

कुमारी माथुर—आप पर हाथ उठाया ? घर से निकालने की धमकी दी ?

शांता—जी...

महेश—(बीच में ही) यह सरासर झूठ है ।

कुमारी कपूर—(बिगड़कर) मिस्टर गुप्ता अपने मुवक्किल से बीच में दखल न देने के लिए कहिये ।

[गुप्ताजी महेश को मौन रहने का संकेत करते हैं । महेश हतप्रभ हो जाता है ।]

कुमारी माथुर—पति के इस व्यवहार से आपके दिल को ठेस पहुँची ?

शांता—बहुत ज्यादा ।

कुमारी माथुर—दिमाग को परेशानी हुई ?

शांता—जी हाँ ।

कुमारी माथुर—क्या फिर आप खाना खा सकीं ? रात में सो सकीं ?

शांता—न खा सकी, न सो सकी । रात भर रोती रही ?

कुमारी माथुर—आपके पति ने आपके आँसू पोंछे ? आपको मनाने की कोशिश की ? आपसे माफी माँगी ?

शांता—(रुद्ध कंठ से) नहीं !

कुमारी माथुर—और सुबह जब आप माँ के यहाँ जाने लगीं तो उन्होंने आपको रोकने की कोशिश की ?

शांता—नहीं ।

कुमारी माथुर—(अदालत से) हुजूर, देखा आपने ? मिस्टर महेशचन्द्र ने अपने क्रूर व्यवहार से शांतादेवी के दिल और दिमाग को काफी सदमा पहुँचाया । फिर न आँसू पोंछे, न मनाने की कोशिश की और न माँ के यहाँ जाने से रोका । मजबूर होकर शांतादेवी को न्यायालय की शरण लेनी पड़ी है । मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुजरिम को सख्त से सख्त सजा दी जाये जिससे उन पुरुषों को शिक्षा मिल जाये जो पत्नी को पैर की जूती समझते हैं, उसे घर की दासी समझते हैं, उस पर मनमाने अत्याचार करते हैं ।

कुमारी कपूर—विश्वास रखिये, कुमारी माथुर, इस अदालत से शांतादेवी को सच्चा न्याय मिलेगा ।

श्रीमती वर्मा—(गुप्ताजी से) आपको शांतादेवी से कुछ पूछना है ?

गुप्ताजी—एक-दो सवाल करूँगा, हुजूर ! (शांता से) आपको अपने पति से बहुत शिकायत है, शांतादेवी ?

शांता—(धीमे स्वर में) जी, हाँ ।

गुप्ताजी—आपकी उम्र क्या है ?

कुमारी माथुर—(बीच में ही तेजी से) इस सवाल पर मुझे एतराज है । औरत से उसकी उम्र पूछना बदतमीजी है ।

श्रीमती हुक्कू—दूसरा सवाल कीजिये, मिस्टर गुप्ता ।

गुप्ताजी—(गम्भीर स्वर में) मैं अदालत को यकीन दिलाता हूँ कि मेरा इरादा बदतमीजी करने का नहीं था । खैर ! (शांता से) यह तो बता सकती हैं कि आपकी शादी कब हुई थी ?

शांता—दो साल पहले ।

गुप्ताजी—शादी के पहले आपको यह तो मालूम हो ही गया होगा कि जिस व्यक्ति से आपकी शादी हो रही है वह लखपती नहीं है ?

कुमारी माथुर—इस सवाल का इस मामले से क्या सम्बन्ध है ?

गुप्ताजी—सम्बन्ध है, तभी पूछ रहा हूँ। (शांता से) मालूम हो गया था न ? (शांता मौन रहती है) ठीक है। हाँ, जब आप इतनी 'फारवर्ड' हैं कि पति के विरुद्ध मुकदमा दायर कर सकती हैं, तो माँ-बाप से यह शादी करने के लिए इन्कार भी कर सकती थीं; और क्योंकि आपकी शादी महेशचन्द्र से ही हुई इसलिए जाहिर है कि आपको यह शादी मंजूर थी।

[शांता बेबसी से कभी गुप्ताजी और कभी कुमारी माथुर की ओर देखती है।]

गुप्ताजी—और ब्याह के समय अग्नि और समाज को साक्षी करके आपने कुछ कसमें भी खाई होंगी, है न ?

कुमारी माथुर—पंडित लोग संस्कृत के श्लोक पढ़ते हैं। शांतादेवी संस्कृत नहीं जानतीं, इसलिए उन कसमों का मूल्य...

गुप्ताजी—(बीच में ही) इग्नोरेंस इज नो एक्सक्यूज मिस माथुर ! (शांता से) उन कसमों में एक कसम यह भी थी कि पति जिस तरह रक्खेगा, उसी तरह रहूँगी।

कुमारी माथुर—इसका मतलब यह नहीं कि पति भूखा-नंगा रक्खे, मारे, गाली दे, दिल और दिमाग पर चोट पहुँचाये।

गुप्ताजी—(मुस्कराकर) यह मतलब मैं निकाल भी नहीं रहा हूँ, मिस माथुर ! (शांता की ओर मुड़कर) हाँ, तो पन्द्रह जुलाई की शाम को जब आपके पति दफ्तर से घर आये तब आपने किसी खास बात पर गौर किया था ?

शांता—मुझे याद नहीं...कुछ भी याद नहीं।

गुप्ताजी—मैं याद दिलाता हूँ। वे परेशान थे। थे न ? और आपने उस परेशानी, उदासी, थकन, चिन्ता और बेचैनी की परवाह किये बिना ही नई साड़ी और टाप्स की फरमायश कर दी ?

कुमारी माथुर—पत्नी की माँग पूरी करना पति का धर्म है।

गुप्ताजी—और पति के सुख-दुःख का ध्यान रखना पत्नी का धर्म है। (अदालत से) अब आप ही सोचिये, हुजूर, कि पति की मजबूरियों और परेशानियों का खयाल किये बिना हर वक्त साड़ी और जेवर की माँग करना कहाँ तक ठीक है ? (कुमारी माथुर की ओर मुड़कर) अगर आप महेशचन्द्र की जगह होतीं तो क्या करतीं ?

कुमारी माथुर—मैं...मैं...(झुँझलाकर) अजीब बेहूदा सवाल है।

[श्रीमती वर्मा और श्रीमती हुक्कू मुस्कराती हैं। कुमारी कपूर अपने हाथों को देखने लगती है। पेशकार मुँह घुमाकर हँसता है। शांता बेचैन और महेश पत्थर की प्रतिमा की तरह खड़ा है।]

गुप्ताजी—मुझे शांतादेवी से और कुछ नहीं पूछना है। अब मैं महेशचन्द्र के बयान करवाता हूँ जिससे सिद्ध हो जायगा कि दोष उनका नहीं, शांतादेवी का है। (महेश से) शपथ लीजिए, मिस्टर महेश !

[महेश शपथ लेता है।]

गुप्ताजी—आपका नाम महेशचन्द्र है और आप शांतादेवी के पति हैं ?

[महेश सिर हिलाता है।]

गुप्ताजी—पन्द्रह जुलाई को दफ्तर में ऐसी क्या बात हो गई थी जिससे आप परेशान हो गये थे, आपका मूड खराब हो गया था ?

महेश—बड़े बाबू ने बिला वजह डाँट दिया था।

कुमारी कपूर—बिला वजह वजह क्यों डाँटने लगा कोई। आपने जरूर कोई भूल की होगी।

महेश—बड़े बाबू को पी० ए० साहब ने डाँटा था। उन्होंने अपनी खीझ मुझ पर उतारी।

श्रीमती हुक्कू—और आपने अपना गुस्सा पत्नी पर उतारा। ह्वाट अ शेम !

कुमारी माथुर—आदमी सबसे कमजोर अपनी पत्नी को ही समझता है। तभी...।

गुप्ताजी—(बीच में ही) आपने कमजोर न बनने का फैसला किया है।

[श्रीमती हुक्कू एवं श्रीमती वर्मा हँस पड़ती हैं। पेशकार भी मुस्कराता है। कुमारी माथुर लजा जाती हैं।]

कुमारी कपूर—(गम्भीर स्वर में) नो पर्सनल रिमार्क्स, मिस्टर गुप्ता ! (महेश से) पी० ए० साहब ने बड़े बाबू को क्यों डाँटा था ?

महेश—उन पर बड़े साहब की झाड़ पड़ी थी।

कुमारी कपूर—अच्छी-खासी 'चेन' बन गयी। बड़े साहब ने पी० ए० साहब को क्यों डाँटा ? क्या वे भी किसी की झाड़ खाकर आये थे ?

महेश—जी हाँ ।
श्रीमती हुक्कू—किसकी ?
महेश—अपनी श्रीमतीजी की ।

[सब हँस पड़ते हैं ।]

कुमारी कपूर—यह 'चेन' औरत से शुरू होकर औरत पर ही खत्म हुई । मामले में दिलचस्पी आ गई । आप किस दफ्तर में काम करते हैं ?
महेश—बिजली-कम्पनी के दफ्तर में ।

[श्रीमती हुक्कू चौंककर उसकी ओर देखती हैं । औरों के अधरों पर मुस्कान खेल जाती है ।]

कुमारी कपूर—ओह, आप बिजली कम्पनी के दफ्तर में हैं ! शायद आपके बड़े साहब का नाम...
महेश—(बीच में ही) मिस्टर हुक्कू है उनका नाम ।

[श्रीमती हुक्कू उठकर जाने का उपक्रम करती हैं ।]

कुमारी कपूर—अरे, चलीं कहाँ ? एक मिनट में फैसला किये देती हूँ । मिस्टर गुप्ता, और क्या कहना है आपको ?
गुप्ताजी—मुझे यही कहना है कि बिला वजह डाँट खाकर महेशचन्द्र का मूड खराब हो जाना स्वाभाविक था । परेशानी व झुँझलाहट से भरे वे घर पहुँचे । वहाँ न मुस्कान से स्वागत, न चाय, न नाश्ता ! हमेशा की तरह उस दिन भी शांतादेवी साड़ी और टाप्स की माँग कर बैठीं । चिढ़कर अगर महेशचन्द्र भला-बुरा कह बैठे तो इसमें उनका दोष नहीं है । मैं अदालत से प्रार्थना करता हूँ कि मुकदमा खारिज कर दिया जाये ।
कुमारी माथुर—(अदालत से) अगर मुकदमा खारिज हो गया तो औरतों की इज्जत धूल में मिल जायेगी । पति को उसकी क्रूरता का दण्ड मिलना ही चाहिये । यह सवाल अकेली शांतादेवी का नहीं, देश की करोड़ों नारियों का है जो पुरुष-जाति के जुल्मों का शिकार हो रही हैं । मैं औरत जाति के नाम पर अदालत से अपील करती हूँ कि महेशचन्द्र को कठोर से कठोर दण्ड दिया जाये ।

कुमारी कपूर—श्रीमती वर्मा, आपकी क्या राय है ?

श्रीमती वर्मा—मेरी समझ में तो दोषी शांतादेवी हैं। उन्हें पति की सीमाओं, उसके सुख-दुःख का ध्यान रखना ही चाहिए था।

श्रीमती हुक्कू—मगर मैं महेशचन्द्र को सजा देने के पक्ष में हूँ।

कुमारी कपूर—मैं आपसे सहमत हूँ। यह सच है कि परेशान होने की वजह से महेशचन्द्र ने पत्नी को डाँटा, मगर बाद में वे अपनी भूल का सुधार कर सकते थे।

कुमारी माथुर—(उत्साह से) उन्होंने रोती हुई पत्नी के आँसू तक न पोंछे। इससे ज्यादा कठोरता और क्या हो सकती है ?

श्रीमती हुक्कू—उन्हें भरी अदालत में अपनी पत्नी से माफी माँगनी चाहिए।

कुमारी कपूर—मेरा भी यही फैसला है।

[महेश चौंक पड़ता है। शान्ता के चेहरे पर वेदना के भाव उभर आते हैं।]

श्रीमती वर्मा—मैं इस दण्ड के पक्ष में नहीं हूँ!

गुप्ताजी—(विरोध के स्वर में) हुजूर...

कुमारी कपूर—नो आर्गूमेण्ट्स, मिस्टर गुप्ता। (कुमारी माथुर से) आप इस फैसले से सन्तुष्ट हैं!

कुमारी माथुर—जी हाँ! दिल की चोट के लिए इसी तरह के मरहम की जरूरत थी।

कुमारी कपूर—(आदेश के स्वर में) मिस्टर महेश, आपका जुर्म साबित हो चुका है। आगे बढ़कर शांतादेवी से माफी माँगिये।

[महेश बेबसी से इधर-उधर देखता है। फिर दृष्टि नीची करके आगे बढ़ता है। शांता के हृदय में उठनेवाले तूफान की परछाइयाँ उसके चेहरे पर मँडरा रही हैं।]

महेश—(शांता के समीप जाकर भीगे स्वर में) तुम मुझे छोड़कर चली गयीं, मेरे लिए इससे बड़ा दण्ड और क्या हो सकता है ? (रुककर) अपराध मेरा था और...और मैं उसके लिए तुमसे मा...

शांता—(बीच में ही चीखकर) नहीं, नहीं, नहीं!! (सिसकती हुई) दोष मेरा था। अपराधिनी मैं हूँ। मुझे माफ कर दो...मुझे माफ कर दो।

[शांता महेश के पैरों पर गिर पड़ती है। गुप्ताजी और श्रीमती वर्मा के चेहरों पर सन्तोष के चिह्न हैं। शेष विस्मित हैं। पेशकार भौंचक्का-सा रह गया है।]

महेश—उठो शांता, चलो, घर चलें।

[महेश शांता को उठाता है।]

श्रीमती वर्मा—देखा आप दोनों ने ? मैं कहती थी न, कि पति-पत्नी के जो सम्बन्ध सनातन काल से चले आ रहे हैं वे टूट नहीं सकते। कानून की दीवार दो हृदयों के बीच बहनेवाली स्नेह-धारा को नहीं बाँट सकती और न...

श्रीमती हुक्कू—(बीच में ही टोककर) रविश...।

गुप्ताजी—अब अदालत का क्या हुक्म है ?

कुमारी कपूर—(झुँझलाकर) दि केस इज डिस्मिस्ड।

[महेश और शांता एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए बाहर जाते हैं। कुमारी माथुर और गुप्ताजी अपने-अपने कलम निकाल कर फैसले पर हस्ताक्षर करने के लिए कटहरे पर झुकते हैं। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।]

अपना-पराया

[समस्यामूलक सामाजिक एकांकी]

पात्र

माँ —अवस्था ४५ वर्ष ।
बेटा—अवस्था २४ वर्ष ।
बहू—अवस्था २२ वर्ष ।
बेटी—अवस्था २२ वर्ष ।

स्थान

किसी भी घर का एक कमरा

समय

प्रातःकाल

[कमरा साधारण है। सामने की दीवार से सटा हुआ एक तख्त पड़ा है जिस पर दरी और चादर बिछी है। बायें कोने में एक छोटी मेज पर रेडियो रक्खा है। दायें कोने में शृंगार करने की मेज है। मेज के पास ही छोटा स्टूल है। कमरे के मध्य में नीची गोल मेज है जिसके आस-पास तीन कुर्सियाँ हैं। मेजपर नीला मेज़पोश है और उस पर फूलदान रक्खा है। फूलदान के फूल बासी हो गये हैं। कमरे में दो द्वार हैं। दाहिनी ओर का द्वार अन्दर तथा बायीं ओर का द्वार बाहर जाने के लिए है। दोनों पर पर्दे पड़े हैं।

पर्दा उठने पर हम बहू को तख्त पर बैठी हुई देखते हैं। उसका मुँह हमारी ओर है और वह अपने पति के कोट में बटन टाँक रही है। रंगीन धोती और छपे हुए ब्लाउज में गौर वर्ण तथा आकर्षक नाक-नक्शेवाली बहू को सुन्दर कहा जा सकता है। बिखरी हुई लटें बहुत अच्छी लग रही हैं। बटन टाँकने के बाद वह उठकर कोट मेज पर रख देती है और फिर शृंगार करने की मेज के दर्पण में अपना चेहरा देखती है। फिर स्टूल पर बैठकर कंघी से अपने केश ठीक करने लगती है। उसी समय अन्दर से माँ आती है। वह सफेद धोती-ब्लाउज पहने है; बाल अधपके हैं।]

माँ—(असन्तुष्ट स्वर में) यह भी कोई सिंगार करने का वखत है, बहू ?

बहू—(कंघी मेज पर रखकर स्टूल से उठती हुई) बाल बिखर गये थे। सोचा, जरा ठीक कर लूँ।

माँ—(हाथ नचाकर) ऐ है...! बड़ी आई है बाल ठीक करनेवाली! वह खाना खा रहा है और तू जुल्फें सँवार रही है।

बहू—(चिढ़कर) आपकी तो आदत पड़ गयी है भला-बुरा कहने की। कोट में बटन टाँककर दो मिनट बाल ठीक करने लगी तो कौन-सी आफत आ आ गयी, माँजी ?

माँ—(तेज स्वर में) आफत आये तेरे मायके में। खबरदार तो यहाँ आफत-बापत का नाम लिया। हूँ...! कुलच्छिनी कहीं की!

बहू—गाली न दीजिये।

माँ—तू है किस खेत की मूली जो बड़े बोल बोल रही है। यह तेरे बाप का घर नहीं है। यहाँ धौंस नहीं चलेगी। समझी!

बेटा—(अन्दर से) सवेरे-सवेरे फिर महाभारत छिड़ गया ?

माँ—(ऊँचे स्वर में) जरा लच्छन तो देखो धन्ना सेठ की बेटी के। मुझसे जबान लड़ाती है।

बहू—(बिगड़ कर) मेरे घर वालों को भला-बुरा न कहिये। वे धन्ना सेठ न सही, पर आपके सामने हाथ फैलाने तो नहीं आते।

माँ—(व्यंग्य से) उनका बस चले तो सारा घर ढोकर ले जायें।

[अन्दर से बेटा आता है। वह कोट-पैन्ट और जूता पहने है।]

बेटा—क्या बात हुई, माँ ?

माँ—मैंने सिंगार करने से टोक दिया तो जलकर आग-बबूला हो गयीं रानी-जी ! तुम्हीं बताओ बेटा, यह सिंगार करने का बखत है ?

[बेटा बहू की ओर देखता है।]

बहू—आपके कोट में बटन टाँककर बाल ठीक करने लगी थी। बस, कुढ़कर कोसने लगीं मेरे बाप-दादों को।

माँ—किस मुँहजली ने कोसा है तेरे बाप-दादों को ? अरे, झूठे के मुँह में कीड़े पड़ते हैं, कीड़े !

बहू—सुन लीजिये।

बेटा—माँ, तुम भी तो हद करती हो। हर वक्त बकना, गाली देना कहाँ तक ठीक है ? जो काम प्यार से समझाने से हो सकता है वह...

माँ—(बीच में ही) तू भी बहू का पच्छ लेने लगा। (रुआँसी होकर) मेरा तो भाग ही खोटा है।

बेटा—तुम तो बुरा मान गयीं, माँ !

माँ—क्या इसी दिन के लिए तुझे जनमा था ? पाल-पोस कर बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, ब्याह किया और अब तू मुझी को आँखें दिखाता है ! कल की आयी यह छोकरी तेरी सब-कुछ हो गयी और मैं...मैं कुछ भी नहीं रही !

बेटा—माँ...

माँ—माँ कहाँ रही मैं ! बहू के आते ही नौकरानी हो गयी, नौकरानी।

बहू—कोल्हू के बैल की तरह जुती तो मैं रहती हूँ दिन रात ! आप क्या करती हैं ?

माँ—काम करती है तो क्या मुझ पर अहसान करती है ? मैं तो अपनी सासको कभी तिनका तक नहीं छूने देती थी।

बहू—मैं कौन-सा पहाड़ उठवाती हूँ आप से ? परोसिनों से गप्पें करने और मुझपर हुक्म चलाने के सिवाय और क्या काम करती हैं आप ?

माँ—(बेटे से) सुनता है अपनी सिर-चढ़ी की बातें ? (बहू से) अरे, जब तक जाँगर चलते थे तब तक काम करती थीं। [अब मेरी आराम करने की उमर है। अब मैं बहू नहीं, सास हूँ—सास !

बहू—जो सलूक आपकी सास ने आपके साथ किया, वही आप मेरे साथ करना चाहती हैं ?

बेटा—(बहू से) तुम्हीं चुप हो जाओ न !

बहू—पत्थर की प्रतिमा की तरह तीन साल तक मौन रही, सब-कुछ सुनती रही—सहती रही ! अब मेरा मुँह बन्द नहीं रह सकता।

माँ—(आगे बढ़कर चुनौती के स्वर में) मुझे धमकी देती है ! ले, मारेगी मुझे ? मार...है हिम्मत ?

बेटा—(माँ को हटाकर) बड़ों को क्षमाशील होना चाहिए, माँ ! तुम जाओ अन्दर ! मैं समझा दूँगा। फिर शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।

[माँ बहू की ओर क्रुद्ध दृष्टि डाल कर अन्दर जाती है।]

बेटा—(मेज से कोट उठाकर पहनता हुआ) क्यों लगती हो माँ के मुँह ?

बहू—सारा दोष मेरा तो है ही।

बेटा—माँ का तो स्वभाव ही चिड़चिड़ा है। तुम पढ़ी-लिखी हो, समझदार हो। उनकी बातों का बुरा न माना करो।

बहू—उन्हें भी मेरी भावनाओं का खयाल करना चाहिये। वे तो मुझे गैर समझती हैं।

बेटा—यह तुम्हारा भ्रम है।

बहू—मैं उनकी विचार-धारा को अच्छी तरह समझती हूँ। वे टिपिकल सास हैं। उनके लिए बहू काम करनेवाली मशीन से ज्यादा कुछ नहीं।

बेटा—(हँसकर) अभी ऐसा कह रही हो। जब तुम सास बनोगी तो तुम भी सब-कुछ भूलकर बहू पर हुक्म चलाओगी।

बहू—(गम्भीरता से) हर समय की हँसी अच्छी नहीं होती। सहनशक्ति की भी सीमा होती है। सुबह से लेकर राततक चूल्हा-चक्की, झाड़ू-बुहारी में लगी रहती हूँ। फिर भी माँजी को सन्तोष नहीं होता। हर काम में दोष निकालती हैं—झाड़ू ठीक नहीं लगी, कपड़े साफ नहीं धुले, बर्तन ठीक नहीं मँजे। काम का काम करो और ऊपर से डाँट सुनो। मैं साफ कहे देती हूँ। अब मैं बेकार की डाँट-डपट नहीं सह सकती।

बेटा—मैं माँ को भी समझा दूँगा। मगर वे पुराने संस्कारों में पली हैं। बदलने में समय लगेगा। तुम भी गुस्सा थूककर समझ से काम लो।

बहू—मैं मूर्ख हूँ। मेरे पास समझ कहाँ ?

बेटा—तुम तो बात का बतंगड़ बनाती हो। (रुककर) मैं तो परेशान हो गया हूँ। तुम समझती हो कि मैं माँ का पक्ष लेता हूँ और माँ समझती हैं कि मैं तुम्हारा पक्ष लेता हूँ। तुम दोनों के बीच में मेरा तो वही हाल हो रहा है जो चक्की के पाटों के बीच में बिचारे गेहूँ का होता है।

बहू—तुम खूब माँ का पक्ष लो। मुझे शिकायत नहीं होगी। (रुद्ध कंठ से) मैं होती ही कौन हूँ तुम्हारी ? कल की आयी हुई मामूली छोकरी...।

बेटा—भगवान् के लिए अब चुप भी रहो।

बहू—चुप रहकर सब-कुछ सहती रहूँ तब तुम भी खुश रहोगे। अगर ऐसा ही है तो मेरा गला घोंट दो। सब झंझट दूर हो जायेगा।

बेटा—(बेचैनी से टहलता हुआ) मैं तो तंग आ गया हूँ इस हाय-हाय से।

बहू—और मैं कौन खुश हूँ ? मेरी जिन्दगी तो नरक बन गयी है नरक। (सिसककर) लड़ाका तो मैं ही हूँ ! माँ के गुन कोई नहीं देखता।

बेटा—माँ कैसी भी हो, माँ है।

बहू—अगर माँ इतनी प्यारी है तो मुझे ब्याह कर क्यों लाये थे ? भेज दो मुझे मायके और रहो माँ-बेटा चैन से।

बेटा—अच्छा, अब रोना-धोना बन्द करो। दफ्तर से लौटकर मैं माँ को समझा दूँगा। (पास जाकर) अब तो हँस दो जरा !

बहू—आप दफ्तर जाइये।

बेटा—हँसोगी नहीं ?

बहू—कलेजे की आग ने ओठों की हँसी को झुलसा दिया है।

बेटा—भगवान् की सौगन्ध, गुस्से में तुम बहुत प्यारी लगती हो। अच्छा, टा, टा ! शाम को फिर मिलेंगे।

[बेटा बाहर जाता है। बहू कमरे में टहलने लगती है। अन्दर से माँ का प्रवेश।]

माँ—(एक हाथ कमर पर रखकर दूसरा मटकाती हुई) कर ली मेरी शिकायत !

बहू—क्या मतलब ?

माँ—मैं सब सुन रही थी। मेरे बेटे के कान भर रही थी। माँ-बेटे में फूट डालना चाहती है ? मगर याद रख, मेरे बेटे पर तेरे तिरिया चरित्तर का असर नहीं होगा। (गर्व से) वह मेरा बेटा है।

बहू—त्रिया-चरित्र दिखायें आप, मुझे क्या जरूरत पड़ी है ?

माँ—मेरे मुँह लगेगी तो जीभ खींच लूँगी, हाँ। हे राम ! देखो तो, मुझे गाली देती है। अगर जानती कि तू ऐसी कुलच्छिनी है तो व्याहकर न लाती।

बहू—अगर मुझे मालूम होता कि यहाँ आकर मेरा जीवन जीता-जागता नरक बन जायेगा तो मैं भी इस घर में कदम न रखती।

माँ—तो अब चली जा। तुझे पकड़े कौन है ?

बहू—(चीखकर) माँजी...

माँ—चीखकर मुझे डराना चाहती है ? मैं डरनेवाली नहीं हूँ। तुझ जैसी सैकड़ों छैल-छबीलियों को देख चुकी हूँ। समझी ? यह बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं।

बहू—(रुद्ध कंठ से) आप चाहती क्या हैं ?

माँ—यह आँसू किसी और को दिखाना। (मुँह बनाकर) ऐसी कंकाला बहू से तो बहू का न होना ही अच्छा है।

बहू—(आगे बढ़कर) मैं कंकाला हूँ ?

माँ—और क्या देवी है तू ? दिन-रात कलह मचाये रहती है।

बहू—कलह मैं मचाती हूँ ?

माँ—और क्या मैं मचाती हूँ ? मुझे पागल कुत्ते ने काटा है क्या ? न जाने कैसा खानदान है तेरा ? माँ-बाप ने यह भी नहीं सिखाया कि सास-ससुर की कैसे सेवा करनी चाहिए !

बहू—अगर मेरे वंश का नाम लिया तो बुरा होगा।

माँ—वंश का नाम न लूँ तो किसका लूँ ? वंस का असर तो औलाद पर पड़ता ही है ।

बहू—यह न भूलिये कि मैं...मैं भी किसी की बेटी हूँ और...और आपकी बेटी भी किसीकी बहू है ।

माँ—अरे, मेरी बेटी का क्या नाम लेती है ? उसके ससुरालवाले उसे आँख की पुतली की तरह रखते हैं । सास-ससुर की ऐसी सेवा करती है वह कि हर कोई उसे हाथों-हाथ लिये रहता है । और एक तू है—न बात करने का शऊर और न काम करने का ढंग । तू तो मोम की गुड़िया है—गुड़िया ।

बहू—(आगे बढ़कर चुनौती के स्वर में) मैं मोम की गुड़िया हूँ ?

माँ—और क्या ! तीन साल ब्याह कर आये हुए और अभी तक आँगन सूना है । हूँ...! लड़ना तो खूब जानती है । अगर तीन साल में एक चुहिया भी जनमी होती तो समझती कि तू...! हुँ...मैं तो सुनते-सुनते थक गयी । सारा टोला कहता है कि तुम्हारी बहू बाँझ है ।

बहू—ठीक है ! जब मैं किसी काम की नहीं तो फिर यहाँ रह कर भी क्या करूँगी । चली जाऊँगी माँ-बाप के घर ।

माँ—कल जाती हो तो आज चली जा और आज जाती हो तो अभी चली जा । सुनाती किसे है ?

बहू—मैं अभी जा रही हूँ । अब एक पल भी इस नरक में नहीं रह सकती ।

[बहू तेजी से अन्दर जाती है]

माँ—(ऊँचे स्वर में) अगर यह नरक है तो तेरे मायके में कौन-सा सरग रक्खा है ? हुँ...! धमकी देती है । अगर कल ही नयी बहू न ले आऊँ तो नाम नहीं ।

[माँ क्रुद्ध मुद्रा में टहलती रहती है । पल भर बाद बाहर से साड़ी-ब्लाउज पहने और हाथ में एक बैग लिये बेटी आती है ।]

बेटी—(बैग फर्श पर रख कर) माँ......

माँ—(झपटकर छाती से लगाती हुई) मेरी बेटी ! अरे, तूने आने की खबर भी नहीं दी । तेरा भाई स्टेशन पहुँच जाता ।

बेटी—(कुर्सी पर बैठकर) अचानक ही आना हो गया ।

माँ—(बाहरवाले द्वार से झाँककर) किसके साथ आयी है? बाहर तो कोई नहीं है।

बेटी—अकेले ही आयी हूँ।

माँ—(चौंककर) अकेले? (बेटी के पास जाकर) क्यों हँसी करती है!

बेटी—मैं ठीक कह रही हूँ, माँ।

माँ—मगर उन लोगों ने अकेले आने कैसे दिया? क्या...क्या गोपाल को छुट्टी नहीं मिली?

बेटी—मैं लड़कर आयी हूँ।

माँ—(कुर्सी पर बैठकर धीमे स्वर में) लड़कर?

बेटी—हाँ, माँ। (रुद्ध कंठ से) तुमने तो मुझे ऐसे नरक में धकेल दिया कि पल भर भी चैन की साँस नहीं ले सकी।

माँ—(बेटी के सिर पर हाथ फेरकर) क्या कह रही है तू?

बेटी—दिन-रात मशीन की तरह काम करती थी, फिर भी सास सदा ताने ही देती रहती थी। आखिर कब तक गालियाँ सुनती?

माँ—सास गाली देती थी?

बेटी—हाँ, माँ! सिर्फ मुझी को नहीं, तुम्हें भी भला-बुरा कहती थी। हमारे वंश को कोसती थी।

माँ—उस बुढ़िया की यह मजाल!

बेटी—वह बुढ़िया पूरी चुड़ैल है, माँ। कहती थी, चार साल हो गये ब्याह कर आये हुए और तूने एक मरी चुहिया भी नहीं जनमी! (आँखों में आँसू भरकर) तुम्हीं बताओ, माँ! इसमें मेरा क्या दोष? यह तो अपने-अपने भाग्य की बात है।

माँ—तू ठीक कहती है, बेटी! औलाद होना-न-होना तो भाग की बात है। इसमें तेरा क्या कसूर? हाँ, गोपाल ने नहीं कहा कुछ?

बेटी—वे तो अपनी माँ की हाँ में हाँ मिलाने वाले हैं।

माँ—तुम्हारी ननद भी तो है। आखिर तुम्हारी सास यह क्यों नहीं सोचती कि उनकी बेटी भी किसी की बहू बनेगी?

बेटी—अगर हर सास यह सोचने लगे तो सास-बहू का झगड़ा ही मिट जाये। सास तो बेटी को अपना और बहू को पराया समझती है।

माँ—हूँ...! तू ठीक कहती है।

बेटी—मगर मेरी सास को यह कौन समझाये कि बहू-बेटी में कोई अन्तर नहीं!

माँ—(धीमे स्वर में) बहू-बेटी में कोई अन्तर नहीं! बहू-बेटी में कोई अन्तर नहीं!! तू सच कह रही है, बेटी। दोनों अपनी हैं—बेटी भी और बहू भी! (उठकर निश्चय की दृढ़ता से) तू फिकर न कर, बेटी। मैं चलूँगी तेरी सास के पास। (ऊँचे स्वर में) बहू!

बेटी—(उठकर) भाभी अन्दर हैं क्या?

[अन्दर से बहू आती है। रेशमी साड़ी-ब्लाउज पहने है। हाथ में बैग है।]

बहू—(प्रसन्न स्वर में) ननद रानी!

बेटी—कहाँ जा रही हो भाभी?

बहू—अपनी माँ के घर (माँ से) मैं जा रही हूँ। सँभालिये अपना घर।

माँ—(भीगे स्वर में) मुझे माफ कर दे, बहू। मैं अन्धी थी। आज आँखें खुल गयी हैं। (बैग लेकर) तुझे जाने की जरूरत नहीं।

बहू—मैं सब समझती हूँ। अपनी बेटी जो आ गयी है। उसकी सेवा करने के लिए मुझे रोकना चाहती हैं आप। मैं परायी जो ठहरी।

माँ—(बैग फर्श पर रखकर) नहीं, बहू! परायी तो बेटी होती है। मुझे माफ नहीं करेगी?

[बहू "माँजी" कहकर माँ के पैरों पर झुकती है। माँ उसे उठाकर सीने से लगाती है।]

बेटी—माँ, आपने ठीक ही कहा है। बेटी तो परायी होती है। (अपना बैग उठाकर) अपना घर छोड़कर आयी, यह मेरी भूल थी। मैं जा रही हूँ, माँ।

[बेटी द्वार की ओर बढ़ती है।]

माँ—ठहर तो। मैं भी चलूँगी तेरे साथ।

बहू—आप जायेंगी क्यों?

माँ—इसकी सास को यह समझाने के लिए कि बहू-बेटी में कोई फरक नहीं। बेटी को अपना और बहू को पराया समझना भूल है—बहुत बड़ी भूल है। (बेटी का हाथ पकड़कर) अभी अन्दर चल, बेटी! भैया को दफ्तर से आ जाने दे।

[तीनों प्रसन्न मुद्रा में अन्दर वाले द्वार की ओर बढ़ती हैं। तभी यवनिका गिरती है।]

पहरेदार

[व्यंग्य-एकांकी]

पात्र

दरोगाजी —पुलिसचौकी के इन्चार्ज; अवस्था ४५ वर्ष ।
दीवानजी —पुलिसचौकी के दीवान; अवस्था ४० वर्ष ।
लाखनसिंह—सिपाही; अवस्था ३५ वर्ष ।
महेश —क्लर्क; अवस्था ३० वर्ष ।
पहलवान —कुख्यात गुण्डा; अवस्था ४५ वर्ष ।

स्थान

पुलिसचौकी का दफ्तर

समय

दिसम्बर की एक रात

[किनारे की दीवारें गेरू से पुती हैं। सामने की दीवार पर गाँधीजी का चित्र टँगा है। चित्र के नीचे नगर का मान-चित्र है। आस-पास छः पोस्टर लगे हैं जिन पर मोटे-मोटे अक्षरों में निम्न बातें लिखी हैं :

(१) घूस लेना महापाप है।

(२) पुलिस जनता की सेवक है।

(३) सच्चाई और ईमानदारी से काम करना पुलिस का धर्म है।

(४) मद्य-निषेध योजना जनता की भलाई के लिए है।

(५) शराब का जहर शराबी के साथ-साथ उसके परिवार को भी मारता है।

(६) अपराधियों को पकड़ने में पुलिस की सहायता कीजिए।

दाहिने कोने में एक अलमारी है जिसमें कुछ फाइलें रक्खी हैं। बाएँ कोने में एक ऊँचा स्टूल पड़ा है। दाहिनी दीवार में एक बड़ी खिड़की है जो बन्द है। बायीं दीवार का द्वार बाहर के कमरे में खुलता है। यह द्वार खुला है। कमरे के बीच में एक बड़ी मेज है जिसके तीन ओर कुर्सियाँ पड़ी हैं। मेज पर कुछ फाइलें, कलम, दवात, घंटी और फोन है। दरोगाजी बीच की कुर्सी पर बैठे हैं और ध्यानपूर्वक एक फाइल पढ़ रहे हैं। उनका स्थूल शरीर खाकी ओवरकोट से ढँका है। फोन की घंटी बजती है। दरोगाजी झुँझला कर फोन उठाते हैं।]

दरोगाजी—हलो, मैं चौकी से बोल रहा हूँ! हाँ, हाँ, मैं ही दरोगा हूँ। कौन...खन्ना साहब ? फरमाइए ! जी, चोरी का पता...? अजी, अभी कहाँ लगा है। पता लगते ही खबर दूँगा। इत्मीनान रक्खें ! जी...? हाँ, हाँ...देर तो लगती है ! देखिए न, पहले के ही दर्जनों केस पड़े हैं ! जी...? नहीं, आप क्यों तकलीफ करेंगे ! मैं खुद हाजिर हो जाऊँगा ! आदाब-अर्ज ! (चोंगा रखकर) हुँ...जब देखो तब फोन, गोया पुलिस इन्हीं से तनख्वाह पाती है ! काम करना मुश्किल कर देते हैं।

[दरोगाजी झुँझला कर फाइल बन्द कर देते हैं और ओवरकोट की जेब से सिगरेट की डिब्बी तथा दियासलाई निकालकर एक सिगरेट सुलगाते हैं। तभी बाहर से महेश की बाँह पकड़े हुए लाखनसिंह आता है। उसके दूसरे हाथ में एक झोला है। वह भी खाकी ओवरकोट पहने है। सिर पर टोपी है। महेश पाजामा-कमीज और कोट पहने है। शीत से बचने के लिए कोट के कालर ऊपर कर लिये हैं।]

लाखनसिंह—(सैनिक सलाम करके) हुजूर...

दरोगाजी—क्या है ?

लाखनसिंह—हुजूर, यह शख्स लोगों की निगाहों से बचने की कोशिश करता हुआ चला जा रहा था। मुझे शक हुआ। मैंने पीछा किया और तब यह भागने लगा, हुजूर !

महेश—(टोककर) यह झूठ है; दरोगाजी ! मैं भागा नहीं, खड़ा हो गया।

लाखनसिंह—(डाँटकर) बको मत ! (दरोगाजी से) हाँ तो, हुजूर, मैंने लपक कर इसकी गर्दन धर दबोची। घबराकर इसने इस झोले को फेंकने की कोशिश की, मगर मैंने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं, हुजूर ! झपटकर झोला अपने कब्जे में ले लिया।

महेश—दरोगाजी, यह सरासर गलत है। झोला मैंने खुद सौंप दिया था।

दरोगाजी—चुप रहो ! (लाखनसिंह से) इस झोले में क्या है ? बम...

लाखनसिंह—हुजूर, बम से भी ज्यादा खतरनाक चीज है। (झोले से ब्रांडी की बोतल निकालकर मेज पर रखता हुआ) देखिए, हुजूर !

दरोगाजी—हुँ...(बोतल उठाकर) विलायती ब्रांडी है। (महेश से) क्यों हजरत, तुम्हें मालूम नहीं कि शहर में नशाबन्दी है ?

महेश—(धीमे स्वर में) मालूम है !

दरोगाजी—(डपटकर) फिर लाट साहब के नाती बनकर बोतल लिये क्यों घूम रहे थे ?

महेश—जी, बात यह है...

दरोगाजी—(बीच में ही) खामोश ! तुम्हें मालूम नहीं कि शराब जहर है, जहर ! (बोतल मेज पर रखकर) इस बोतल में पानी नहीं, आग है ! समझे ? अपना नहीं तो बीबी-बच्चों का तो खयाल करो। घर फूँक तमाशा देखने का शौक क्यों चर्राया है ?

महेश—मैं शराबी नहीं हूँ, दरोगाजी ! यकीन कीजिए, आज से पहले मैंने इस गन्दी चीज को छुआ भी नहीं।

दरोगाजी—ओह, तो नया-नया शौक है (रुककर व्यंग्य से) क्या तुम्हारा बाप काफी रुपया छोड़कर मरा है ?

महेश—मैं एक मामूली क्लर्क हूँ।

दरोगाजी—तो जरूर रिश्वत लेते होंगे। मेहनत की कमाई से विलायती शराब कौन पीता है? (रुककर) कितने में मिली है?

महेश—चालीस रुपये में!

लाखनसिंह—हुजूर, यह तो लूट है, लूट!

दरोगाजी—अगर दूकानदार ब्लैक न करे तो हमारी और एक्साइज वालों की जेबें कैसे गर्म करे? (महेश से) हाँ साहब, तो तुम घूस भी नहीं लेते और चालीस रुपये की शराब भी पीते हो! क्यों··?

महेश—(आगे बढ़कर) मैं यह बोतल पीने के लिए नहीं लाया हूँ, दरोगाजी!

दरोगाजी—(हँसकर) तो क्या बड़े साहब को घूस में देने के लिए लाए हो?

महेश—(धीमे और दुखी स्वर में) नहीं। मेरा बच्चा बीमार है। उसे ठण्ड लग गई है। लोगों ने कहा ब्रांडी फायदा करेगी सो··

दरोगाजी—(बीच में ही) मुझ से उड़ते हो!

महेश—मैं सच कह रहा हूँ, दरोगाजी! यकीन न हो तो चलकर देख लीजिए।

दरोगाजी—(क्रुद्ध स्वर में) हमें अपने बाप का नौकर समझ रक्खा है? (ऊँचे स्वर में) दीवान जी!

दीवानजी—(बाहर से) आया हुजूर! (खाकी ओवरकोट पहने हुए दीवानजी का प्रवेश। मेज पर रक्खी बोतल देखकर) गोया कि यह तो विलायती मालूम होती है, हुजूर!

दरोगाजी—नया-नया शौक है। कुछ दिनों में ठर्रे पर उतर आयेंगे।

महेश—दरोगाजी, भगवान् साक्षी है। मैं झूठ नहीं बोलता। मेरा बच्चा बीमार है। उसी के लिए...

दीवानजी—(बीच में ही) गोया कि यह चरके किसी और को देना। तुम जैसे सैकड़ों से रोज पाला पड़ता है। गोया कि...

दरोगाजी—दीवानजी, इनकी तलाशी लेकर रिपोर्ट लिखा लो और इन्हें हवालात में डाल दो।

महेश—(अनुनय के स्वर में) विश्वास कीजिए दरोगा जी, मैं...

दीवान—गोया कि बको मत! (कोट और कमीज की तलाशी लेकर रेजगारी मेज पर रखते हुए) गोया कि पियेंगे अंग्रेजी शराब और जेब में रक्खेंगे सिर्फ सात आने।

दरोगाजी—ठीक से देख लिया ? (लाखनसिंह से) तुम देखो ।

लाखनसिंह—(तलाशी लेकर) अब तो कानी कौड़ी भी नहीं है, हुजूर !

दरोगाजी—(क्षण भर सोचने के बाद) हुँ...! लाखनसिंह, तुम फौरन फकीरे के यहाँ चले जाओ और...

लाखनसिंह—(बीच में ही) समझ गया हुजूर ! एक बोतल ठर्रा लाना है न ?

दरोगाजी—हाँ ! जाओ !

[लाखनसिंह का तेजी से प्रस्थान]

दीवानजी—गोया कि हुजूर, आपने यह तरकीब ठीक सोची । ब्रांडी के बजाय ठर्रे का जुर्म ठीक रहेगा । (महेश से) अब फँसे हो कानून के शिकंजे में ! रात भर में आटा-दाल का भाव मालूम हो जायगा ।

[बाहर से पहलवान का प्रवेश । वह नाटे कद का स्वस्थ व्यक्ति है । रंगीन तहमद, सफेद कुर्ता और काली वास्कट पहने है । ऐंठी हुई नुकीली मूँछें हैं । माथे पर चोट के कई निशान हैं ।]

दरोगाजी—आओ, पहलवान बैठो !

पहलवान—(बैठकर बोतल की ओर देखता हुआ) दरोगाजी, मँहगाई के इस जमाने में अँग्रेजी शराब कौन पीता है ? (हँसकर) हमें तो ठर्रा भी नहीं नसीब होता ।

दरोगाजी—(महेश की ओर संकेत करके) नवाबजादे तुम्हारे सामने खड़े हैं !

पहलवान—क्यों बे छोकरे, कहीं से हराम की रकम मार दी है क्या ?

महेश—(अपमान से तिलमिला कर) जरा ठीक से बात कीजिए ।

पहलवान—(हाथ नचाकर) अच्छा जी ! मेढ़की को भी जुकाम होने लगा । अबे, एक झापड़ रसीद करूँगा तो धूल चाटने लगेगा । जानता नहीं मैं कौन हूँ ।

दीवानजी—गोया कि जाने भी दो, पहलवान ! तुम भी किसके मुँह लगते हो ।

[महेश बोलने के लिए मुँह खोलता है । तभी बाहर से लाखनसिंह आता है ।]

लाखनसिंह—(सैनिक सलामी देकर) हुजूर, फकीरे तो नहीं मिला ।

दरोगाजी—(गरजकर) नहीं मिला ? टेंट में चार पैसे क्या हो गए कि जमीन

पर पैर ही नहीं रखता। गया होगा साला बायसकोप देखने।

पहलवान—मैंने तो कई बार आपसे कहा कि फकीरे ठीक आदमी नहीं है। आप बेकार में ही सिर पर चढ़ाए थे। बन्द करा दीजिए भट्ठी कल से। छठी का दूध याद आ जायगा।

दीवानजी—ऐसा ही करना पड़ेगा (लाखनसिंह से) और तुम भी हाथ हिलाते चले आए? फकीरे नहीं था तो क्या घसीटे, वजीरा, रमुआ सब मर गए थे? कहीं से भी ले आते। दर्जनों भट्ठियाँ हैं इलाके में।

दीवानजी—गोया कि टर्रा नहीं तो जिंजर ही सही, हुजूर! (लाखनसिंह से) गोया कि शर्माजी की दूकान से चार औंस ले तो लो दौड़ कर।

पहलवान—अरे, अहलवान के रहते वहाँ जाने की क्या जरूरत है? (वास्कट की जेब से जिंजर की शीशी निकालकर मेज पर रखता हुआ) यह रहा जिंजर!

दरोगाजी—(हँसकर) तुम बहुत काम के आदमी हो, पहलवान! (दीवानजी से) दीवानजी, टिंचर जिंजर का जुर्म बनाकर इन्हें हवालात में...।

महेश—(बीच में ही) मुझ पर रहम कीजिए, दरोगाजी! मेरा बच्चा बीमार है। मुझे बन्द न कीजिए, दरोगाजी, मुझे बन्द न कीलिए। (कण्ठ रुँध जाता है)

दीवानजी—गोया कि पहले क्यों नहीं सोचा कि कानून का पंजा फौलाद का होता है? गोया कि अब रहम की भीख माँगते हो?

दरोगाजी—इन्साफ अन्धा होता है। तुमने सरकार का कानून तोड़ा है। कानून तोड़नेवाले को सजा दिलाना हमारा धर्म है।

महेश—दरोगाजी, मैंने कानून जरूर तोड़ा है मगर...मगर...(आर्द्र स्वर में) मेरे बच्चे की जिन्दगी दाँव पर थी। (हाथ जोड़कर) आप भी बाल-बच्चे वाले हैं। मैं दया की भीख माँगता हूँ। मैं...मैं...भला आदमी हूँ। किसी से भी पूछ लीजिए। वर्माजी भी मुझे जानते हैं।

दरोगाजी—कौन वर्माजी?

पहलवान—अरे उन्हीं नेताजी के लिए कह रहा होगा जो...

दरोगाजी—(बीच में ही) जिन्होंने तुम्हारी सिफारिश कई बार की थी? (महेश से) वर्मा जी तुम्हारी सिफारिश करेंगे?

महेश—मैं उनके घर के सामने ही रहता हूँ, दरोगाजी ! आप फोन करके पूछ लीजिए ।

दरोगाजी—वर्माजी के पास तुम जैसे ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे की सिफारिश करने का वक्त कहाँ ? वे ठहरे बड़े नेता ! फिर भी तुम्हारी दिल-जमई के लिए पूछ लेता हूँ ! क्या नाम है तुम्हारा ?

महेश—महेशचन्द्र !

दरोगाजी—(फोन का चोंगा उठाकर नम्बर मिलाने के बाद) हलो, वर्मा-जी ! मैं चौकी से दरोगा बोल रहा हूँ ! जी...? नहीं, कोई खास बात नहीं ! आप महेशचन्द्र को जानते हैं ? जी...? हाँ, हाँ वही जो आपके घर के सामने रहता है । इसके पास शराब की बोतल बरामद हुई है ! जी...? हाँ, हाँ समझ गया ? एक मिनट...(चोंगे पर हाथ रख कर महेश से) वर्माजी कहते हैं कि अपराधी को सजा मिलनी ही चाहिए । चाहो तो खुद बात कर लो ।

महेश—(चोंगा लेकर) वर्माजी, मैं महेश बोल रहा हूँ, जी, मेरा बच्चा बीमार है उसी के लिए...! क्या ? आप कुछ नहीं कर सकते ? सुनिए तो...हलो... हलो...! (शिथिल हाथ से चोंगा रखकर) आप सच कहते थे, दरोगा जी ! वर्मा जी बहुत बड़े नेता हैं । उनके पास हमारे जैसे मामूली आदमियों की बात सुनने के लिए समय नहीं । (पहलवान की ओर देखकर) अगर...अगर मैं भी पहलवान की तरह...(वाक्य अपूर्ण छोड़ कर भीगे स्वर में) मुझे बन्द कर दीजिए, दरोगाजी, मुझे बन्द कर दीजिए ।

पहलवान—बच्चू , तुमने पढ़ा नहीं कि बिन भय होय न प्रीति ! (दरोगाजी से) मरे हुए को मारने से क्या फायदा ? छोड़ दीजिए ।

दीवानजी—गोया कि यही मैं भी अर्ज करने वाला था, हुजूर !

दरोगाजी—(महेश से) पहलवान के कहने से इस बार छोड़ देता हूँ, मगर फिर कभी कानून तोड़ने की कोशिश न करना !

[लाखनसिंह का प्रस्थान]

दीवानजी—(महेश से) गोया कि यह न भूलो कि अब हमारी सरकार है और गोया कि सरकार जो कानून बनाती है वे हमारी भलाई के लिए होते हैं ।

दरोगाजी—और यह भी याद रक्खो कि हम पुलिस वाले कानून के पहरेदार हैं। हमारी आँखों में धूल झोंकना बहुत मुश्किल है। हाँ...

[लाखनसिंह का प्रवेश]

लाखनसिंह—(सैनिक सलामी देकर) हुजूर, खन्ना साहब आए हैं।

दरोगाजी—(बिगड़कर) क्यों आए हैं ? अभी तो फोन पर बात हुई थी !

लाखनसिंह—हुजूर,पहरेदार को छोड़ने के लिए कह रहे हैं।

दरोगाजी—कह दो कि जब तक चोरी का सुराग नहीं मिलेगा तब तक पहरे-दार को हिरासत में रक्खा जाएगा। पहरेदार की मिली भगत के बिना कोई चोरी हो ही नहीं सकती। जाओ।

लाखनसिंह—(द्वार की ओर बढ़कर) अभी लीजिए, हुजूर।

महेश—और यह भी कह देना कि आजकल के पहरेदार शरीफों से तो कहते हैं—सोते रहो, और चोरों से कहते हैं—चोरी करो !

[लाखनसिंह का प्रस्थान]

दरोगाजी—(हँसकर) आदमी तो समझदार मालूम होते हो ! हाँ, चाहो तो झोला और रेजगारी लेते जाओ। बोतल तो सरकारी मालखाने में जमा होगी।

[महेश झोला और रेजगारी लिए बिना ही द्वार की ओर बढ़ता है।]

पहलवान—अमाँ, बच्चे के लिए जिंजर तो लेते जाओ। ब्रांडी से बढ़िया काम करेगा, प्यारे !

[पहलवान हँसता है। महेश तेजी से बाहर चला जाता है।]

दरोगाजी—दीवानजी, सामने वाले तमोली से गिलास और सोडे की बोतलें मँगा लो ! बोतल (पेट पर हाथ फेरकर) सरकारी मालखाने में जमा कर दीजिए !

दीवानजी—गोया कि अभी लीजिए, हुजूर ! (द्वार की ओर बढ़कर) गोया कि बला की सर्दी भी तो है आज !

[दीवानजी का प्रस्थान। दरोगाजी और पहलवान खुल कर हँसते हैं। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।]

बरगद की छाया

[यथार्थ पर आधारित आदर्शोन्मुखी एकांकी]

पात्र

काशीनाथ, रामनाथ } चार भाई; अवस्था क्रमशः
उमानाथ, ओमनाथ } ४५, ३५, २५ तथा २० वर्ष।

दुलारी—काशीनाथ की पत्नी; अवस्था ४२ वर्ष।

श्यामा—रामनाथ की पत्नी; अवस्था ३२ वर्ष।

रंजना—उमानाथ की पत्नी; अवस्था २२ वर्ष।

स्थान

बैठक

समय

रात का दूसरा प्रहर

[बैठक साधारण है। सामने की दीवार पर कई कैलेण्डर टँगे हैं जिन से ज्ञात होता है कि अक्तूबर का महीना है। दीवार से सटा हुआ तख्त पड़ा है जिस पर दरी-चादर बिछी है। बायें कोने में एक मेज और कुर्सी है। मेज पर कुछ पुस्तकें तथा कापियाँ रखी हैं। बायीं दीवार में खूँटी लगी है और उस पर कुछ वस्त्र टँगे हैं। बायीं ओर का द्वार भीतर जाने के लिए है तथा दाहिनी ओर का बाहर जाने के लिए। पहला द्वार खुला है; दूसरा भीतर से बन्द है। दाहिने कोने में एक हुक्का रखा हुआ है।

पर्दा उठने पर रामनाथ तख्त पर बैठा हुआ दिखाई पड़ता है। वह धोती, कमीज और स्वेटर पहने है। उसके आस-पास तीन-चार बहियाँ खुली पड़ी हैं। वह एक बही में ध्यानपूर्वक कुछ लिख रहा है। एक क्षण बाद दाहिनी ओर के द्वार पर बाहर से आघात होता है।]

राममाथ—(चौंककर) कौन...?

उमानाथ—(बाहर से) मैं हूँ, भैया।

रामनाथ—खोलता हूँ!

[रामनाथ बहियाँ एक ओर खिसका कर उठने का उपक्रम करता है। तभी भीतर से श्यामा आती है। वह गोरे रंग की दुबली-पतली स्त्री है। धोती-ब्लाउज पहने है।]

श्यामा—मैं खोले देती हूँ। तुम काम करो अपना।

[रामनाथ फिर काम करने लगता है। श्यामा द्वार खोलती है। उमानाथ और रंजना का प्रवेश। उमानाथ चूड़ीदार पायजामा और काली शेरवानी पहने है। रंजना रेशमी साड़ी और ब्लाउज पहने है।]

श्यामा—मेरी चीज लाये, लालाजी?

उमानाथ—आप की चीज? (याद करता हुआ) ओह, आपने चूड़ियाँ मँगाई थीं। सच, एकदम भूल गया, भाभी!

रंजना—(श्यामा को एक ओर ले जाकर) सच जीजी, मैं अपनी चीजें लाना भी भूल गयी। नुमायश बहुत अच्छी है। कल फिर जाऊँगी।

उमानाथ—(श्यामा की ओर बढ़कर) कल जरूर ले आऊँगा, भाभी! सच, ऐसी चूड़ियाँ लाऊँगा कि आप भी याद करेंगी। (रामनाथ से) भैया, अभी सोये नहीं आप?

रामनाथ—(सिर उठाकर) पहले काम, फिर आराम! कल इन्कमटैक्स की तारीख है। बहियाँ पूरी न हुईं तो...

[उमानाथ हँसता है और फिर रंजना के साथ भीतर चला जाता है। श्यामा दाहिनी ओर का द्वार भीतर से बन्द कर लेती है। उसके मुख पर असन्तोष के चिह्न हैं।]

श्यामा—(तख्त पर बैठकर) चलो, मुझे भी नुमायश ले चलो।

[रामनाथ काम में लगा रहता है]

श्यामा—(बहियाँ बन्द करती हुई) मैं तो तंग आ गई हूँ इन मुई बहियों से। जब देखो तब दुकान का काम। जी में आता है आग लगा दूँ।

रामनाथ—अरे, अरे! यह क्या गजब करती हो, मुन्नू की माँ? कहीं बहियों के लिए ऐसा कहा जाता है?

श्यामा—जब जी जलता है तब मुँह से जली-कटी बात निकल ही जाती है! मैं पूछती हूँ, क्या दूकान के सभी कामों का ठेका तुम्हीं ने ले रखा है? सवेरे जल्दी खाकर दूकान खोलना, दिन भर मुए गाहकों से सिर खपाना और रात में बहियों से माथा-पच्ची करना? बन्द करो बहियों को। जिसे जरूरत होगी, अपने-आप लिखेगा। (मुँह बिगाड़कर) खाने के लिए सब और कमाने के लिए कोई नहीं।

रामनाथ—तुम्हारा सिर फिर गया है, मुन्नू की माँ।

श्यामा—(रुआँसी होकर) जब तुम्हीं ऐसा कहोगे तो और लोग क्यों छोड़ देंगे? (रुककर) जेठ-जेठानी को कथा-वार्ता से फुर्सत नहीं; उमा घरवाली को घुमाने-फिराने में ही मगन रहता है—कभी सिनेमा, कभी सरकस! रहा ओम, सो उसे किताबों और यार-दोस्तों से ही छुट्टी नहीं मिलती। बेदाम के नौकर तो हमीं हैं। तुम कोल्हू के बैल की तरह दिन-रात दूकान के काम में लगे रहते हो और मैं चूल्हे-चक्की में...।

रामनाथ—मुन्नू की माँ...

श्यामा—बड़े और छोटे तो चैन की बंसी बजाते हैं। आफत मँझलों की है। कान खोलकर सुन लो, अब यह अन्धेर नहीं चलेगा।

रामनाथ—क्या बक रही हो?

श्यामा—बक रही हूँ? तुम्हारे लिए यह बकना है? (रुककर आर्द्र कंठ से)

मेरा नहीं, तो बच्चों का तो ख्याल करो। तुम्हें तो दूकान के काम से ही फुर्सत नहीं मिलती। बच्चे बिगड़ रहे हैं। न ठीक से पढ़ना, न लिखना।

रामनाथ—क्या ओम कुछ नहीं देखता ?

श्यामा—(हाथ नचाकर) किसी को क्या गरज पड़ी है ? तुम्हीं हो जो दूसरों के लिए जान खपाते हो। देखो न, उमा से चूड़ियाँ मँगाई थीं! कहता है, भूल गया। जरा-सी बात याद नहीं रही। जैसे मैं पैसे नहीं देती।

[रामनाथ विचारमग्न हो जाता है। स्पष्ट है कि पत्नी की बातें उस पर प्रभाव कर रही हैं।]

श्यामा—(समीप खिसककर) काम तुम करते हो और मौज दूसरे उड़ाते हैं। तुम्हीं बताओ, तुम्हें औरों से ज्यादा मिलता है कुछ ?

रामनाथ—नहीं...नहीं तो !

श्यामा—पिछले महीने तुम्हारे लिए मक्खन ले लिया तो जेठजी बोले—"मक्खन आएगा तो सबके लिए, नहीं तो किसी के लिए भी नहीं।"

रामनाथ—यह कोई बात नहीं। जिसको जिसकी जरूरत है वह उसे मिलना चाहिए।

श्यामा—यह बात तो उस घर में चलती है जहाँ भेदभाव नहीं होता। यहाँ तो मुँह-देखा व्योहार होता है। छोटी बहू बड़े घर की है, पढ़ी-लिखी है। उसके मुँह कोई नहीं लगता। जानते हैं, वह किसी की धौंस नहीं सहेगी, मुँह-फट जवाब दे देगी। उसकी हर इच्छा पूरी होती है। और हम...हम जरा-जरा-सी बात के लिए तरस कर रह जाते हैं। (रुककर) जब अपना भाग ही खोटा है तो दूसरे को दोष क्यों दें ? तुम्हारे लिए तो बस भाई ही सगे हैं, हम कुछ नहीं। न कभी मुझसे हँस कर बोले और...और न बच्चों को प्यार से चुमकारा...!

रामनाथ—ऐसा न कहो, मुन्नू की माँ, ऐसा न कहो। मैं समझता था...

श्यामा—(बीच में ही) मेरा कहा मानो। चक्की में घुन की तरह कब तक पिसते रहोगे ? जेठजी से साफ-साफ कह दो कि...

रामनाथ—क्या कह दूँ दादा से !

श्यामा—अपना हिस्सा माँगो और क्या ? अलग रहकर मेहनत करोगे तो

फल भी मिलेगा।

रामनाथ—(चौंककर) यह क्या कह रही हो?

श्यामा—ठीक कह रही हूँ। जब अलग हो जाओगे तब इन लोगों को तुम्हारी कदर मालूम होगी! जब आप कमाना पड़ेगा तब छठी का दूध याद आ जायगा।

रामनाथ—मगर दादा से बँटवारे के लिए किस मुँह से कहूँ? बाबूजी के बाद वे ही सब कुछ हैं। और...और फिर सब कुछ उन्हीं का कमाया हुआ है।

श्यामा—जब कमाया होगा तब कमाया होगा। अब तो तुम कमाते हो। चार दिन दुकान न जाओ तो आटा-दाल का भाव मालूम पड़े। सारा धन्धा चौपट हो जाए। (समझाते हुए) जेठजी का क्या है? आगे-पीछे कोई नहीं। अपने तो पाँच-पाँच बच्चे हैं। उनका जीवन...

रामनाथ—(बीच में ही) बस करो, मुन्नू की माँ, बस करो। अभी तक अन्धेरे में भटक रहा था। (निश्चय की दृढ़ता से) मैं अभी इसका विरोध करता हूँ।

[भीतर से दुलारी आती है। वह कुछ-कुछ स्थूल है। धोती-ब्लाउज पहने है।]

दुलारी—तुम भी कैसी हो बहू? भीतर मुन्नी रो रही है और तुम यहाँ बातें कर रही हो। जाओ, सुलाओ जाकर!

श्यामा—(चिढ़कर) तुम्हीं सुला देती तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ता, जिठानीजी? मगर तुम्हें हमारे बच्चे क्यों अच्छे लगने लगे, घिनौने जो ठहरे। छोटी बहू की बच्ची की तरह साफ-सुथरे कहाँ?

दुलारी—(तेज स्वर में) बहू...!

[श्यामा तेजी से भीतर चली जाती है।]

दुलारी—बहू को क्या हो गया है, लाला जी?

रामनाथ—आँखें खुल गयी हैं, भाभी!

[दुलारी विस्मय से रामनाथ की ओर देखती है। भीतर से सूट-बूट पहने ओमनाथ आता है।]

ओमनाथ—भैया...

रामनाथ—क्या है?

ओमनाथ—पाँच रुपये दे दीजिये।

रामनाथ—क्यों ? कहाँ जाने की तैयारी है ?

ओमनाथ—वह...वह...एक मित्र का विवाह है न ! वहीं जा रहा हूँ। (कलाई में बँधी घड़ी देखकर) देर न कीजिए भैया !

रामनाथ—(तेज स्वर में) कल का छोकरा मुझे बनाता है ! यह क्यों नहीं कहता कि सिनेमा जाना है। साफ-साफ सुन ले, हरामखोरी के लिए एक पैसा भी नहीं मिलेगा।

[ओमनाथ याचना-भरी दृष्टि से दुलारी की ओर देखता है।]

दुलारी—दे क्यों नहीं देते, लाला जी ? बच्चा है...

रामनाथ—तुम इसे बच्चा कहती हो ? इतने बड़े लड़के हजारों कमाते हैं। मगर इस घर की तो लीला ही न्यारी है ! कमाने वाला एक और खाने वाले अनेक। आखिर इस तरह कब तक चलेगा ? (ओमनाथ से) पढ़ना-लिखना छोड़कर कमाने की चिन्ता कर। बी० ए० तक पढ़ लिया, बहुत है।

ओमनाथ—आप चाहते हैं एम० ए० न करूँ ?

रामनाथ—जब आप कमा कर फीस देनी पड़े तब पता लगे।

ओमनाथ—अब ऐसा ही होगा भैया ! सौ-सवा-सौ की नौकरी मिल ही जायेगी ?

रामनाथ—कल करता है नौकरी तो आज ही कर ले। धमकी किसे देता है ?

[दाहिने द्वार पर बाहर से फिर आघात होता है। ओमनाथ द्वार खोल देता है। काशीनाथ का प्रवेश। वह धोती, कमीज और कोट पहने है। सिर पर काली गोल टोपी और आँखों पर चश्मा है। ओमनाथ फिर द्वार बन्द कर देता है। काशीनाथ टोपी उतार कर खूँटी पर टाँग देता है और फिर तख्त पर बैठ जाता है।]

दुलारी—सुन रहे हो, कल से ओम नौकरी करेगा !

काशीनाथ—नौकरी करेगा ? क्यों ?

ओमनाथ—(व्यंग्य से) कमाने वाले अकेले भैया हैं और खर्च करने वाले हम सब। सोचता हूँ...।

काशीनाथ—(हँसकर) समझा। परन्तु नौकरी करने की क्या आवश्यकता है ? अगर तुझे भैया का इतना ही ध्यान है तो दुकान पर बैठकर हाथ बटाया कर। (रामनाथ से) बहियाँ पूरी हो गयीं ?

रामनाथ—मुझसे सब काम अकेले नहीं हो सकता ।

काशीनाथ—(न समझने के ढंग से) क्या मतलब ?

रामनाथ—(सूखे स्वर में) दूकान सिर्फ मेरी तो है नहीं जो मैं ही मरूँ-खपूँ ! जब किसी और को चिन्ता नहीं है तो मैं ही क्यों करूँ ?

काशीनाथ—(दुःखी स्वर में) तुम्हारे मुँह से यह क्या सुन रहा हूँ, रामनाथ ?

रामनाथ—समाई की भी हद होती है, दादा ! देखिये न, ओम सिनेमा जाने के लिए तैयार खड़ा है; उमा बहू के साथ अभी-अभी नुमायश से लौटा है । क्या मैं मनुष्य नहीं ? क्या मेरी इच्छा बाल-बच्चों के साथ घूमने-फिरने की नहीं होती ?

काशीनाथ—तुम्हें मना कौन करता है ? जाओ, बहू के साथ सिनेमा चले जाओ । बहियाँ मैं पूरी कर दूँगा ।

रामनाथ—मेला-त्योहार तब अच्छा लगता है जब जी में चैन होता है ?

काशीनाथ—तुम्हें क्या बेचैनी है ?

रामनाथ—मेरे आगे कच्ची गृहस्थी है । मैं दिन-रात मेहनत करता हूँ, मगर बदले में मुझे मिलता क्या है ? रूखा-सूखा भोजन और मोटे-झोटे वस्त्र ।

काशीनाथ—तुम चाहते क्या हो ?

रामनाथ—अपना भाग चाहता हूँ । अलग रहकर परिश्रम करूँगा तो कुछ फल भी मिलेगा ।

काशीनाथ—(दुःखी स्वर में) रामनाथ...?

ओमनाथ—न जाने आज भैया को क्या हो गया है ?

दुलारी—बहू ने कान भरे हैं । न जाने क्या झूठी-सची...

श्यामा—(सहसा प्रवेश करके) मुझे क्यों बदनाम करती हो, जिठानी जी ? क्या उनके आँखें नहीं हैं जो मैं झूठी-सच्ची लगाऊँ-बुझाऊँ ?

काशीनाथ—(पीड़ित स्वर में) बना-बनाया घर न बिगाड़ो, रामनाथ ! बाबूजी की आत्मा को बहुत कष्ट होगा ।

रामनाथ—मरे हुए बाबूजी आत्मा के सुख के लिए मैं जीवित बच्चों को दुःख की आग में नहीं झोंक सकता, दादा ! मेरा निश्चय अटल है !

[भीतर से उमानाथ आता है । वह पायजामा-कुर्ता पहने है ।]

उमानाथ—(वातावरण की गम्भीरता से चौंककर) क्या बात है, दादा ?

काशीनाथ—रामनाथ अलग होना चाहता है।

उमानाथ—मगर क्यों ? हमसे कोई भूल हुई है, भैया ?

श्यामा—अपने दिल से पूछो ! दिन भर मटरगस्ती किया करते हो ! तुम लोगों को क्या ? चाहे किसी की जान जाए, चाहे रहे।

दुलारी—यह क्या कह रही हो, बहू ?

श्यामा—झूठ कह रही हूँ ? चुल्हे-चक्की से जूझ-जूझ कर शरीर आधा नहीं रहा। कभी हाथ बटाया किसी ने ? दुकान के बोझ ने इनकी कमर तोड़ दी। कभी गया कोई...

दुलारी—हे राम, क्या होने वाला है इस घर में ? (कुर्सी तख्त के पास खींचकर उस पर बैठती हुई) मेरा तो कलेजा धड़क रहा है।

काशीनाथ—(रामनाथ से) मैं जानता हूँ, तुम पर बहुत ज्यादा काम पड़ता है। (उमानाथ और ओमनाथ की ओर मुँह घुमाकर) अगर तुम लोग अपने धर्म को समझते तो यह दिन न आता। (रुककर) मगर तुम लोगों को दोष क्यों दूँ। दोषी मैं भी हूँ ! परिवार के मुखिया का धर्म भूलकर पूजा-पाठ में लगा रहा।

उमानाथ—(रामनाथ से) अपनी भूल के लिए क्षमा माँगता हूँ, भैया ! अब कोई शिकायत नहीं होगी।

ओमनाथ—मैं भी कालेज के बाद आप का हाथ बटाया करूँगा, भैया ! हमें क्षमा कर दीजिए।

श्यामा—इन बातों में क्या आना-जाना है ? अच्छा यही है कि हँसी-खुशी अलग हो जायें। जगहँसाई कराने से क्या लाभ ? (भीतर जाने के लिए द्वार की ओर बढ़ती हुई) कल से इस घर में दो चूल्हे जलेंगे। हाँ !

[श्यामा भीतर चली जाती है]

काशीनाथ—ऐसा ही होगा। (निःश्वास छोड़कर) शायद यही दिन देखने के लिए जीवित था। (उमानाथ और ओमनाथ से) तुम लोग भी अलग होना चाहते हो ?

उमानाथ
ओमनाथ }—नहीं, दादा, कभी नहीं।

काशीनाथ—(दुलारी से) घर में काफी वर्तन हैं। जाओ, बहू से कहो कि अपनी मन-पसन्द के छाँट ले।

[दुलारी भीतर चली जाती है। उमानाथ कुर्सी पर बैठ जाता है।]

काशीनाथ—(रामनाथ से) घर की अवस्था तुमसे छिपी नहीं है। बोलो, क्या चाहते हो?

रामनाथ—(सिर नीचा करके) आप हाथ उठाकर जो दे देंगे, उसी में सन्तोष कर लूँगा।

काशीनाथ—(उमानाथ से) तुम्हारी क्या राय है?

उमानाथ—भैया को अलग दूकान करने के लिए कुछ रुपया दे दीजिए।

ओमनाथ—मेरी भी यही राय है।

काशीनाथ—मैं तुम लोगों से सहमत नहीं। रामनाथ की कच्ची गृहस्थी है। नया धन्धा जमाने में कठिनाई होगी।

ओमनाथ—अलग होने का फल तो मिल जाएगा।

काशीनाथ—(डाँटकर) ओम! इतना पढ़-लिखकर भी तमीज नहीं आयी! (ओमनाथ सहमकर सिर झुकाता है।) शायद आजकल कालेजों में बड़ों से बात करने का तरीका सिखाया ही नहीं जाता। (रामनाथ से) तुम चलती हुई दुकान ले लो, रामनाथ! हम नई दुकान कर लेंगे!

उमानाथ—(विरोध के स्वर में) जमी हुई दुकान देना...

काशीनाथ—(बीच में ही) मेरे लिए सब लोग बराबर हैं।

उमानाथ—तब आप हमारे साथ अन्याय क्यों कर रहे हैं, दादा? सब को समानता...

काशीनाथ—(बीच में ही) समानता का मतलब है आवश्यकता के अनुसार मिलना। रामनाथ की जरूरतें तुम लोगों से ज्यादा हैं। क्या तुम चाहते हो कि उसके बच्चे नंगे रहें, भूखे रहें? नहीं, उसे यही दुकान मिलेगी।

[उमानाथ और ओमनाथ मौन रहते हैं, परन्तु उनके चेहरों पर असंन्तोष का भाव है।]

काशीनाथ—(गम्भीर स्वर में) परिवार का मुखिया बरगद के पेड़ की तरह होता है। वह स्वयं धूप में तपता है; वर्षा में भीगता है परन्तु अपनी छाया

में बसने वालों को कोई कष्ट नहीं होने देता। (रामनाथ से) जाकर अपनी भाभी से दुकान की कुंजियाँ ले लो! जाओ!

[रामनाथ उठकर मन्द गति से भीतर जाता है।]

उमानाथ—दादा, मैं फिर कहूँगा कि...

काशीनाथ—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता! जाओ, मुझे बहियाँ पूरी करनी हैं।

ओमनाथ—जिन्हें दुकान दे दी, उन्हें बहियाँ भी दे दीजिए। आप पूरी करेंगे।

काशीनाथ—ओम, मेरे सामने मुँह खोलते लज्जा नहीं आती?

उमानाथ—आप आराम कीजिए, बहियाँ हम पूरी कर देंगे।

काशीनाथ—तुम लोग जागो और मैं सोऊँ! पागल हो गए हो? जाओ, सोओ जाकर! (ओमनाथ से) अरे, तू तो सिनेमा जा रहा था! (जेब से पाँच का नोट निकालकर) ले, देख आ जाकर।

ओमनाथ—दादा, मुझे और लज्जित न कीजिए। (दृढ़ता से) अब मैं सिनेमा नहीं देखूँगा। भैया अलग हो गए, कोई बात नहीं! हम लोग मेहनत करेंगे!

उमानाथ—हाँ, दादा! हम लोग जल्द ही नई दुकान जमा लेंगे।

काशीनाथ—अच्छा, अच्छा! भीतर जाओ! मुझे काम करना है। (निःश्वास छोड़कर) लगता है, जैसे दाहिना हाथ ही टूट गया हो! हे भगवान्! (ओमनाथ से) भाभी से दूध के लिए कह देना और...हुक्के के लिए भी! (निःश्वास छोड़कर) अब बहू तो कुछ करेगी नहीं।

[उमानाथ और ओमनाथ भीतर जाते हैं। काशीनाथ बहियाँ खोलकर लिखने लगता है। उसके चेहरे पर वेदना के चिह्न हैं। भीतर से दुलारी आती है।]

दुलारी—कुंजियाँ लाला जी को दे दी हैं। (तख्त पर बैठकर) बर्तन भी...

काशीनाथ—(बीच में ही) दूध ले आओ। हाँ, चिलम भी भर लाना। बरसों से बहू के हाथ की चिलम पी रहा हूँ। देखूँ तुम कैसी भरती हो?

दुलारी—धीरे-धीरे सीख लूँगी! (उठकर कोने से हुक्का उठाकर तख्त के पास रखती हुई) अभी लाती हूँ दूध और चिलम!

[दुलारी भीतर जानेके लिए द्वार की ओर बढ़ती है। तभी भीतर से श्यामा आती है। उसके एक हाथ में दूध का गिलास है और दूसरे में भरी हुई चिलम। दुलारी आश्चर्य से उसकी ओर देखती है। श्यामा चिलम हुक्के पर रख देती है।]

श्यामा—(गिलास काशीनाथ की ओर बढ़ा कर) दूध...

काशीनाथ—(चौंककर) बहुत जल्दी ले आयीं ? ओह, मैं समझा था...! (हुक्के पर चिलम देखकर) तुमने क्यों तकलीफ की, बहू ?

[काशीनाथ गिलास लेकर दूध पीता है। खाली गिलास तख्त पर रखकर हुक्के की निगाली मुँह में दबा लेता है।]

काशीनाथ—(दो-एक घूँट लेने के बाद) आज आखिरी बार तुम्हारे हाथ की चिलम पी रहा हूँ, बहू ! कल से...

[भीतर से रामनाथ आता है। उसके हाथ में कुंजियों का गुच्छा है।]

काशीनाथ—कुंजियाँ मिल गयीं ? अब...अब शायद बहियाँ लेने आये हो ? ठीक है ! अब हमारा इन पर क्या अधिकार ? (बहियाँ बन्द करके) ले जाओ !

[रामनाथ आगे बढ़ता है। वह उदास है। तख्त के पास पहुँचकर सहसा झुकता है और कुंजियों का गुच्छा काशीनाथ के पैरों के पास रख देता है।]

रामनाथ—(सिसकता हुआ) दादा, मुझे क्षमा कर दीजिये। मुझे नहीं चाहिए दुकान—कुछ नहीं चाहिए ! (काशीनाथ के पैर पकड़कर) मैं इन चरणों की छाया से दूर नहीं रह सकता, दादा, दूर नहीं रह सकता। स्वार्थ ने मुझे अन्धा कर दिया था, किन्तु आपकी उदारता ने आँखें खोल दी हैं।

[काशीनाथ रामनाथ को उठाकर अपने पास बैठाता है और अपने हाथ से उसके आँसू पोंछता है।]

काशीनाथ—(समझाता हुआ) आँसू न बहाओ, रामनाथ ! मैं...मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि तुमने अपना निश्चय बदल दिया है। (हर्ष से) मेरी टूटी हुई बाँह फिर जुड़ गयी है।

श्यामा—(दुलारी के पैर छूकर) सारा दोष मेरा है, जिठानी जी ! मुझे जो चाहे दण्ड दीजिये।

[दुलारी 'बहू' कह कर श्यामा को उठाती है और उसे छाती से लगा लेती है।]

काशीनाथ—दोष किसी एक का नहीं, हम सभी का है। सम्मिलित परिवार में सुख-शान्ति तभी रह सकती है जब हर सदस्य अपनी जिम्मेदारी समझे

और उसे पूरा करे। अब उमा और ओम की भी आँखें खुल गयी हैं। देखना, अब इस घर में हमेशा मिल-जुल कर काम होगा और...

रामनाथ—(बीच में ही) और आपके वरद हस्त की छाया हमारे सिरों पर रहेगी, दादा ! अब हम कभी नहीं लड़ेंगे, कभी नहीं।

काशीनाथ—(दुलारी से) अरे, तुम यहाँ खड़ी-खड़ी क्या कर रही हो ? भीतर जाकर उमा और ओम को शुभ-समाचार सुनाओ।

[दुलारी और श्यामा भीतर जाती हैं। काशीनाथ बहियाँ खोलते हैं। धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।]

39860
21·6·७८

I. I. A. S. LIBRARY

Acc. No.

This book was issued from the library on the date last stamped. It is due back within one month of its date of issue, if not recalled earlier.

9. 8. 77

हमारे अन्य प्रकाशन

उपन्यास

जब खेत जागे	कृष्णचन्द्र	३·००
अंधेरा-उजाला	ख्वाजा अहमद अब्बास	२·२५
यात्रा	साने गुरुजी	४·००
जहाँ बर्फ गिरती है	ए. हमीद	३·५०
झील और कमल	,, अनु. श्यामू संन्यासी	६·००
खरगोश का सपना	कृष्णचन्द्र	२·२५
चालाक खरगोश	,,	२·००
इशारा	ना. सी. फडके	५·५०
मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना	श्री सत्य	२·५०
जग की रीत	यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र"	२·५०
मीनाक्षी	गोशियाँ. अनु. रंजन परमार	१·५०
मुक्ति के पथ पर	दत्त भारती	३·५०
मध्य मार्ग	बाल्ज़ाक	३·५०
मैं हारी	जेन आस्टिन	५·००

कहानियाँ

यहाँ से वहाँ तक

निशानियाँ

मम्मी

Library IIAS, Shimla
H 812.8 R 186 N
00039860

नाटक

बापू	आचार्य आत्रेय	२·००
नेपथ्य	आरिगपूडि	३·००
निर्माण का देवता	विनोद रस्तोगी	२·५०